हिन्दू-धर्म के ज्ञान-मय क्रिया-पक्ष की शोध-पूर्ण प्रस्तुति

'कौल-कल्पतरु'

चण्डी

(सं० १९९९ वि०-सन् १९४२ ई० से प्रकाशित)

शाक्त धर्म क्या है?

'मातृका-आश्रम', दिल्ली में प्रतिष्ठित भगवती आद्या का विग्रह

यह प्रति ७) रु०/वार्षिक मूल्य ४५) रु०

‘कौल-कल्पतरु’ चण्डी

४८वाँ वर्ष : सं० २०४६ वि० (अप्रैल ८९-मार्च ९०)

चैत्र शुक्लाष्टमी २०४६ वि०—अप्रैल १९८९ से ‘चण्डी’ मासिक पत्रिका का नया ४८वाँ वर्ष प्रारम्भ हो चुका है। ‘चण्डी’ के इस ४८व वर्ष में द्वै-मासिक प्रकाशन हो रहा है। प्रत्येक अङ्क सुन्दर सचित्र शोध-पत्रिका-स्वरूप में प्रकाशित हो रहा है। निम्न-लिखित चार महत्त्वपूर्ण अङ्क प्रकाशित हो चुके हैं—

१ गुरु-तत्त्व का माहात्म्य-निदर्शन

२ गुरु-साधना

३ महा-शक्ति-पीठ विन्ध्याचल का परिचय

४ शाक्त-धर्म का परिचय

शीघ्र ही शेष दो महत्त्वपूर्ण अङ्क प्रकाशित हो जाएँगे—

५ हिन्दी कामाख्या तन्त्र

६ शाबर मन्त्र-संग्रह

सदस्यता-शुल्क

‘चण्डी’ के ४८ वें वर्ष—उपर्युक्त छः अङ्कों का वार्षिक सदस्यता-शुल्क पैंतालीस (४५-००) रु० है। सदस्यता-शुल्क मनीआर्डर या बैंक-ड्राफ्ट (‘कौल-कल्पतरु चण्डी’ के नाम) द्वारा भेज सकते हैं।

विशिष्ट अङ्क

‘चण्डी’ वर्ष ४८ के उपर्युक्त छः अङ्कों के साथ-साथ चार विशेषांक अलग से प्रकाशित होने थे, जिनमें तीन विशेषाङ्क प्रकाशित हो चुके हैं, यथा—१ हिन्दी भुवनेश्वरी-रहस्य—पहला भाग (पृष्ठ ९६), २ चण्डी पुराण, हिन्दी-अर्थ-सहित (पृष्ठ ९६), ३ क्या राम-चरित-मानस तन्त्र है? (पृष्ठ २००), ४ हिन्दी भुवनेश्वरी-रहस्य— दूसरा अन्तिम भाग (पृष्ठ २००)।

इन चार विशेषाङ्कों, का ‘चण्डी’ वर्ष ४८ के सदस्यों के लिए, रियायती मूल्य ६०-०० रु० है, जब कि इनका वास्तविक मूल्य ९०-०० रु० है, इस प्रकार सदस्यों को कुल **तीस रु० की बचत** है।

विशेषाङ्क मँगाने के सम्बन्ध में वर्ष ४८ का सदस्यता-शुल्क भेजते समय, मनीआर्डर-कूपन में स्पष्ट उल्लेख करने की कृपा करेंगे। वे वी० पी० द्वारा भेजे जाएँगे।

मनीआर्डर—‘चण्डी’-कार्यालय, अलोपीबाग मार्ग, इलाहाबाद—२११००६ के पते पर भेजें।

'कौल-कल्पतरु' चण्डी

वर्ष ४८ : आश्विन-कार्तिक २०४६ वि० 'चित्र-भानु'—अक्टूबर-नवम्बर १९८९ : संख्या ७-८

१. **सम्पादकीय एवं सूचना** २
२. श्री भगवती स्तोत्र (हिन्दी-पद्यानुवाद सहित) : पं० रङ्गनाथ 'राकेश', वाराणसी ३
३. सहज-सहज सब कोई कहे ! : पं० चन्द्रकिशोर पाण्डेय 'निशान्तकेतु', पटना ५
४. 'मातृका आश्रम' और परम स्नेह-मयी माधवी मां : श्री कुल-भूषण ८

गुप्तावतार बाबा श्री की पुण्य स्मृति में

शाक्त-धर्म क्या है ?

५. 'शाक्त-सम्प्रदाय' : भारत-धर्म-महा-मण्डल के स्वामी ज्ञानानन्द जी महाराज १
६. शाक्त-सम्प्रदाय की महत्ता : 'न्याय-मूर्ति' पं० शिवनाथ काटजू ४
७. शक्ति-योग : आशु-कवि पं० हरिशास्त्री दाधीच ५
८. शक्ति की आराधना : श्रीस्वामी सत्यानन्द ब्रह्मचारी ७
९. सनातन शाक्त-धर्म : 'कौल-कल्पतरु' पं० देवीदत्त शुक्ल ९
१०. शाक्त-धर्म और वर्णाश्रम धर्म : 'कौल-कल्पतरु' पं० देवीदत्त शुक्ल १४
११. शाक्त का दृष्टि-कोण : 'कौल-कल्पतरु' पं० देवीदत्त शुक्ल १५
१२. शाक्त-मत की प्राचीनता : 'कौल-कल्पतरु' पं० देवीदत्त शुक्ल १७
१३. शाक्त-धर्म का सन्देश : 'कौल-कल्पतरु' पं० देवीदत्त शुक्ल २०
१४. शाक्त की उपासना : 'कौल-कल्पतरु' पं० देवीदत्त शुक्ल २३
१५. शाक्त-धर्म की मूल भावना : 'कौल-कल्पतरु' पं० देवीदत्त शुक्ल २४
१६. शक्ति-उपासना के स्तोत्र—'उपनिषद्' : 'कौल-कल्पतरु' पं० देवीदत्त शुक्ल २५
१७. शाक्त-धर्म की स्वाभाविक विशेषताएँ : 'कौल-कल्पतरु' पं० देवीदत्त शुक्ल २७
१८. 'शाक्त-मत' और 'अद्वैत-वाद' : 'कौल-कल्पतरु' पं० देवीदत्त शुक्ल ३१
१९. हमारी उपास्य देवता—शक्ति : पण्डित हरिशास्त्री दाधीच ३३
२०. एक प्राचीन सत्य—शक्ति-उपासना : पण्डित सतीशकुमार उपाध्याय ३६
२१. कलि-काल का युग-धर्म—शक्ति की उपासना : 'न्याय-मूर्ति' पं० शिवनाथ काटजू ३८
२२. शाक्त-धर्म का प्रचार : 'कौल-कल्पतरु' पं० देवीदत्त शुक्ल ४०

सम्पादकीय

'चण्डी' के प्रवर्तक 'कौल-कल्पतरु' पं० देवीदत्त जी शुक्ल ने ४८ वर्ष पूर्व शाक्त-धर्म पर खुलकर प्रकाश डालनेवाली इस पत्रिका के माध्यम से भारतीय अध्यात्म-जगत् को उद्बोधित करने के लिए जो महत् प्रयास किया, उसका बहुत कुछ बोध इस अङ्क में प्रकाशित उनके लेखों से पाठकों को हो सकेगा। कदाचित् बहुतों को पता न होगा कि पूज्य शुक्ल जी राष्ट्र-भाषा हिन्दी के आदि-परिष्कर्त्ता आचार्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी के उत्तराधिकारी थे। उस रूप में उन्होंने 'सरस्वती' के माध्यम से सन् १९२१ से १९४८ के लगभग २८ वर्षों तक राष्ट्र-भाषा के विकास एवं उत्थान के लिए अहर्निश निःस्पृह भाव से ऐसा लोकोत्तर पुरुषार्थ किया कि हिन्दी-जगत् में स्वर्ण-युग उपस्थित हो गया। महा-प्राण निराला, पन्त, प्रेमचन्द आदि कितने ही मनीषियों को अग्रसर करने में पूज्य शुक्ल जी का ही हाथ रहा किन्तु स्वयं को वे इतना छिपाए रहे कि लोग उन्हें प्रायः भूल ही गए।

अप्रैल, १९८७ में दैवयोग से शुक्ल जी के सम्बन्ध में एक **'स्मृति-ग्रन्थ'** प्रकाशित करने की योजना बन गई। उसी के सन्दर्भ में **'सम्पादक की वाणी'** नामक लघु 'स्मारिका' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। अचानक ही पता चला कि यह तो उनका **'जन्म-शताब्दी-वर्ष'** है। फिर तो महा-माया ने मानों अपने उस अद्वितीय भक्त मनीषी की पूरी गरिमा को ही उद्घाटित करने की 'लीला' रच दी। इस लीला का अनुभव उन्हीं को हो सकता है, जो पिछले तीन वर्षों से प्रकाशित **'सम्पादक की वाणी'** के अङ्कों को और उनके 'स्मृति-ग्रन्थ'— **'सम्पादक के संस्मरण'** को पढ़ने का कष्ट करें।

यहाँ उक्त तथ्यों के उल्लेख करने का उद्देश्य मात्र इतना ही है कि 'चण्डी' उस **'शाक्त-धर्म'** के प्रचार-प्रसार के लिए कटि-बद्ध है, जो 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना में विश्वास ही नहीं रखता, उसे व्यावहारिक रूप से चरितार्थ करने की शिक्षा भी देता है। इस शिक्षा को हृदयङ्गम करने के लिए आध्यात्मिक ज्ञान के साथ ही भौतिक विषयों का भी अधिकाधिक ज्ञान अर्जित करना आवश्यक है। कदाचित् इसी उद्देश्य से पिछले तीन वर्षों में **'श्री शुक्ल-शताब्दी-समारोह'** के कितने ही आयोजन देश के प्रमुख नगरों में अकल्पित रूप से आयोजित हुए और यह श्री जगदम्बा की ही महिमा है कि २१ अप्रैल, १९९० को देश की राजधानी दिल्ली में प्रशासन की ओर से 'कौल-कल्पतरु' शुक्ल जी की जयन्ती मनाने का उपक्रम होने जा रहा है। इस सम्वाद से 'चण्डी' के प्रेमी पाठकों को विशेष प्रसन्नता होगी, इसमें सन्देह नहीं।

सूचना

'चण्डी' वर्ष ४८ का तीसरा विशेषाङ्क—**"क्या 'राम-चरित-मानस' तन्त्र है ?"** एवं चौथा विशेषाङ्क **"श्री भुवनेश्वरी रहस्य, भाग-२"** निश्चित पृष्ठ-संख्या लगभग १०० के स्थान पर लगभग २०० पृष्ठ-संख्या के तैय्यार हुए हैं। अतः यह निर्णय लेना पड़ा कि इस वर्ष यही चार विशेषाङ्क प्रकाशित हों। शेष घोषित विशेषाङ्क **'हिन्दी शारदातिलक तन्त्र'** एवं **'हिन्दी प्राण-तोषिणी तन्त्र, भाग ४'** अगले वर्ष प्रकाशित किए जाएँगे, जो अप्रैल, १९९० से प्रारम्भ होनेवाला है।

इसी प्रकार, इस वर्ष का सामान्य अङ्क ११-१२, जो **'शाबर मन्त्र-संग्रह'** के रूप में प्रकाशित होना था, अब **'शक्ति पीठ काशी'** के रूप में प्रकाशित होगा क्योंकि एक तो **'शाबर मन्त्र-संग्रह'** की पाण्डुलिपि तैय्यार होने में विशेष विलम्ब हो रहा है, दूसरे 'चण्डी' वर्ष ४७, अगस्त-सितम्बर १९८८ में प्रकाशित लेख-माला **'शक्ति-पीठ-काशी'** अधूरी पड़ी है। परिस्थिति-वश हुए इन परिवर्तनों को सहृदय पाठक कृपया स्वीकार करेंगे, यह विनम्र अनुरोध है।

महर्षि वेद-व्यास विरचित :

श्री भगवती स्तोत्र

(हिन्दी पद्यानुवाद सहित)

अनुवादक एवं प्रस्तुत-कर्त्ता : पण्डित श्री रङ्गनाथ 'राकेश', वाराणसी

जय भगवति, देवि ! नमो वरदे, जय पाप-विनाशिनि, बहु-फलदे !
जय शुम्भ - निशुभ - कपाल - धरे, प्रणमामि तु देवि ! नरार्ति-हरे ॥ १

जय चन्द्र - दिवाकर-नेत्र - धरे, जय पावक - भूषित - वक्त्र - वरे !
जय भैरव - देह - निलीन - परे, जय अन्धक - दैत्य - विशोष - करे ॥ २

जय महिष-विमर्दिनि ! शूल - करे, जय लोक-समस्तक - पाप - हरे !
जय देवि, पितामह-विष्णु - नते, जय भास्कर - शक्र-शिरोऽवनते ॥ ३

जय षण्मुख - सायुध-ईश-नुते, जय सागर - गामिनि, शम्भु - नुते !
जय दुःख - दरिद्र - विनाश - करे, जय पुत्र - कलत्र-विवृद्धि-करे ॥४

जय देवि, समस्त-शरीर - धरे, जय नाक-विदर्शिनि, दुःख - हरे !
जय व्याधि-विनाशिनि, मोक्ष-करे, जय वाञ्छित-दायिनि, सिद्धि-वरे ॥५

फल-श्रुति

एतद् व्यास - कृतं स्तोत्रं यः पठेन्नियतः शुचिः ।
गृहे वा शुद्ध - भावेन प्रीता भगवती सदा ॥६

हिन्दी पद्यानुवाद

वर-दायिनि, भगवति ! जय हो तेरी, हे पाप-विनाशिनि, बहु-फल-दात्री ! तेरी जय हो !
शुम्भ - निशुम्भ - कपाल - धारिके ! जय तेरी, हे नर-पीड़ा-नाशिनि ! तेरी जय हो !!

शशि - मार्तण्ड-नेत्र - धारिके ! जय तेरी, प्रज्वलित जात - वेदानना ! तेरी जय हो !
हे भैरव - देह - निलीयमाना ! जय तेरी, अन्धक - दैत्य - नाशिके ! तेरी जय हो !!

हे महिषासुर-मर्दन-कारी ! जय तेरी, शूल-धारिके, सकल-जन-पाप हरे ! तेरी जय हो !
ब्रह्मा - विष्णु - सूर्य - इन्द्र - पूजिता ! जय तेरी, जय हो तेरी, तेरी जय हो !!

कार्तिकेय-सह दिव्यायुध-युत-शङ्कर-वन्दिता ! जय तेरी,
हे चन्द्रमौलि-प्रशंसिता, गङ्गा-रूपा ! तेरी जय हो !

दुःख - दारिद्र्य - विनाश - कारिणी ! जय तेरी,

हे पुत्र - कलत्र - विवृद्धि - कारिणी, तेरी जय हो !!!

हे समष्टि - शरीर - धारिणी ! जय तेरी,

स्वर्ग-लोक-दर्शयित्री, दुःख - हारिणी ! तेरी जय हो !

हे व्याधि-विनाशिनि, मोक्ष-कारिणी ! जय तेरी,

हे वांछित-फल-दात्री, हे सकल-सिद्धि-युता ! तेरी जय हो !

फल-श्रुति

यत्र तत्र - अन्यत्र कहीं भी शुचिता से,

जो नियमित-भावे व्यास-स्तोत्र का करता पाठ ।

घर में अथवा बाहर जहाँ कहीं भी,

परम स्नेह से उसका सदा भगवती देतीं साथ ।।

'चण्डी' के आजीवन सदस्य

'चण्डी' पत्रिका का प्रकाशन नए ४६ वें वर्ष से प्रति-मास सुन्दर रूप में करने की **योजना है** । इस योजना के आर्थिक प्रबन्ध हेतु हमने 'चण्डी' के 'सम्मान्य आजीवन संरक्षक' बनाने का निश्चय किया है । 'सम्मान्य आजीवन-संरक्षता-शुल्क ५००-०० रु० है ।

सम्पन्न पाठक बन्धुओं से निवेदन है कि—

(१) पांच सौ रु० बेंक ड्राफ्ट द्वारा भेजकर 'चण्डी के सम्मान्य संरक्षक सदस्य' बनने की कृपा करें । ड्राफ्ट 'कौल-कल्पतरु चण्डी, इलाहाबाद' के नाम बनवाने की कृपा करें ।

(२) यदि ५००-०० रु० एक साथ भेजना सम्भव न हो, तो १२५) रु० की चार किश्तों (जनवरी-फरवरी-मार्च-अप्रैल) में भेजने की कृपा करें ।

'सम्मान्य आजीवन संरक्षक' को 'चण्डी' जीवन-पर्यन्त, जब तक 'चण्डी' प्रकाशित होती रहेगी, प्रति-वर्ष मिलती रहेगी । इससे प्रतिवर्ष सदस्यता-शुल्क भेजने की असुविधा न रहेगी ।

इसके अतिरिक्त प्रत्येक 'सम्मान्य आजीवन संरक्षक' को 'कल्याण मन्दिर प्रकाशन' द्वारा प्रकाशित एवं वितरित पुस्तकों के मूल्य में विशेष छूट दी जाएगी । प्रत्येक 'सम्मान्य संरक्षक' का शुभ नाम 'सधन्यवाद' 'चण्डी' में प्रकाशित किया जायगा ।

सहज-सहज सब कोई कहे!

पण्डित चन्द्रकिशोर पाण्डेय 'निशान्तकेतु', पटना (बिहार)

इस असहज जीवन-परिवेश और जगत्-स्थिति में मैं 'सहज'-शब्दार्थ का अनुसन्धान करने चला हूँ। सहजता से बड़ा कोई स्वभाव नहीं, शुचिता नहीं। यही सहजता सरलता और ऋजुता है, स्वाभाविकता और प्राकृतिकता है।

'वक्रता'-'कुटिलता' सहजता के विपरीतार्थ-शब्द हैं। यह जीवन कितना वक्र और कुटिल है! और इस प्रतिकूल परिस्थिति में सहजता का अनुसन्धान कर रहा हूँ! रेत में कहीं स्नेह-सरोवर मिल जाए! इतिहास के उत्खनन और शब्द के निर्वचन के बीच कोई अर्थ-सम्पत्ति उपलब्ध हो जाए!

ऋग्वेद में 'सह'-शब्द का स्वतन्त्र रूप में उनसठ बार, बाइस बार पूर्व-पद के रूप में और पन्द्रह बार समस्त पद के पूर्व-पद के रूप में प्रयोग हुआ है। इसी अर्थ में 'सध' का भी प्रयोग मिलता है, किन्तु इसकी प्रयोग-संख्या 'सह' की अपेक्षा अल्प-तर है। बाद में 'सध' के सभी प्रयोग-स्थलों पर भी 'सह' का ही प्रयोग होने लगा। कालान्तर में 'सध' लुप्त होता चला गया और 'सह' शब्द सार्व-देशिक एवं सार्व-कालिक बनता चला गया। 'सह नौ भुनक्तौ' से 'धारा-निपातैः सह....' तक सर्वत्र 'सह' का वर्चस्व स्थापित होता चला गया। 'ध' से 'ह' और 'ह' से 'ध' का वर्णान्तरण भाषा-विज्ञान-सम्मत स्वीकार किया गया। 'दधातेर्हि' सूत्र के अनुसार 'धा' का 'हि' आदेश हो जाता है।

'सह' और 'ज' मिलकर 'सहज' शब्द 'सह-जात' के अर्थ में प्रयुक्त मिलता है। 'सहज' का अर्थ है—साथ-साथ उत्पन्न। इसीलिए इसका अर्थ 'सहोदर भाई' है। 'सहज' का एक सूक्ष्म अर्थ है—जन्म-जात विशेषताएँ। मानव-जाति अपने जन्म के साथ जिन गुणों के साथ आविर्भूत होती है, वे सभी गुण-स्वभाव सहज हैं। प्रेम, करुणा, हास्य, शोक, ममता, वात्सल्य, स्नेह इत्यादि 'सहज' गुण हैं। मनोरञ्जन और उसकी आकांक्षा भी सहज है। इसी तरह प्रेम और दाम्पत्य सहज हैं, पर विवाह निर्मित और विधान-विकसित प्रक्रिया हैं, इसलिए यह सहज नहीं, वरन् एक समझौता है। सामाजिक सह-जीवन सहज है, पर राजनीति कृत्रिम है। अन्ततोगत्वा मानव-जीवन के समक्ष केवल सहज ही शेष रह जाएगा, सभी असहजताएँ समाप्त या तिरस्कृत हो जाएँगी। प्रकृति ही विजयी बनेगी। समस्त अप्राकृतिकताएँ अन्ततः नष्ट होंगी। सहज का ही साम्राज्य शेष रहेगा। सहज स्वाभाविक है।

कबीर ने सहज-साधना, सहज-ज्ञान और सहज-समाधि की अनुभूति का उल्लेख अनेक पदों में किया है। तन्त्र-साधना की परम्परा भारत में प्राग्वैदिक है। फिर पर-वर्ती बुद्ध-धर्म में भी तन्त्र का स्वतन्त्र विकास हुआ। कालान्तर में दोनों धाराओं का सङ्गम सहज-साधना में होता है, जिसका व्याख्यान कबीर ने किया है।

बुद्ध को भगवान् और नवाँ अवतार माना गया है। यह भी विचित्र है कि बुद्ध को, जो ईश्वर को नहीं मानते थे, दशावतार के अन्तर्गत नवम सोपान पर प्रतिष्ठित कर लिया गया! यह भी विवेचनीय और गवेषणीय है कि बुद्ध ने जिन बातों के लिए मना किया, लोगों ने वही सब किया! बुद्ध ने कहा, 'ईश्वर की चिन्ता मत करो, वह है ही नहीं।' लोगों ने उन्हें ही ईश्वर का अवतार बना

दिया ! उन्होंने कहा, 'मूर्ति-पूजा, व्यक्ति-पूजा कभी न करना।' लोगों ने उनकी मूर्तियाँ बना दीं और पूजा शुरू कर दी ! बुद्ध की जितनी मूर्तियाँ बनीं, संसार में और किसी की इतनी मूर्तियाँ न बन सकीं। इसीलिए बुद्ध 'मूर्ति' के पर्याय हो गए। अरबी-फारसी-उर्दू भाषाओं में बुद्ध का ही अपभ्रंश 'बुत' हो गया। बुत-परस्ती को वे नीची निगाह से देखते हैं। बुद्ध ने केश-विन्यास से अलग माथा मुड़वा लिया था। लोगों ने उनकी मूर्तियों में घुँघराले बाल लगा दिए !

बुद्ध के बाद बौद्ध-धर्म के दो भाग हो गए—१ हीन-यान और २ महा-यान। महा-यान की दो धाराएँ निर्मित हो गईं— १ पारमिता-नय तथा २ मन्त्र-नय। पारमिताएँ छः हैं—१ दान, २ शील, ३ शान्ति, ४ वीर्य, ५ ध्यान तथा ६ प्रज्ञा। मन्त्र-नय के अन्तर्गत वज्र-यान, काल-चक्र-यान तथा सहज-यान उप-सम्प्रदाय बने। सहज-यान से ही 'सहजिया'-मत निकला। सभी का एक ही उद्देश्य बना—बुद्धत्व की प्राप्ति। सहज-यान में सहजावस्था की प्राप्ति ही अभीष्ट बनी। कबीर ने 'सहज' को अनेक प्रकार से साधित और व्याख्यात किया है, किन्तु कबीर का 'सहज' आसान नहीं है। भाष्य-कारों का एक निष्कर्ष बना। उल्लेख बना, हठ-योग से 'ह' और जप-योग से 'ज' का साथ-'स' से कर जो शब्द-संक्षेप बनता है, वही सहज है। जहाँ हठ-योग की कठिन साधना सिद्ध हो जाए और योगों में सर्वोपरि जप-योग भी जहाँ स्वभावतः सिद्ध हो, वहाँ दोनों के सङ्गम पर 'सहज'-सिद्धि का अवतरण होता है। सहज-साधना में तो कहा जाता है कि दोनों प्रकार की अतिशयताओं की वर्जना प्राथमिक है, पर सहज का निर्वचन कठोरता की पराकाष्ठा है। ये ही सहज-साधक नाथ और सिद्ध हुए। सिद्ध महा-यान से पारङ्गत हुए और नाथ शैवागम-यान से। पारङ्गति दोनों की हुई। फिर सिद्धों में नाथ-पन्थिता और नाथों में सिद्ध-पन्थिता भी मिल जाती है। सहज में स्व-साक्षात्करण के लिए ध्यान-समाधि का मधु-मय रस रसायन बनने लगता है। कबीर ने सहज-साधना से सम्बद्ध चार पद लिखे हैं—

सहज-सहज सबको कहै, सहज न चीन्हे कोइ,
जिन्ह सहजैं विषिया तजी, सहज कहीजै सोइ।

सहज-सहज सबको कहै, सहज न चीन्हे कोइ,
पाँचू राखै परसती, सहज कहीजै सोइ।

सहजैं-सहजै सब गए, सुत वित कामिणि काम,
एकमेव ह्वै मिलि रह्या, दास कबीरा राम।

सहज-सहज सबको कहै, सहज न चीन्हे कोइ,
जिन्ह सहजैं हरिजी मिलें, सहज कहीजै सोइ।

कबीर ने भी यह घोषणा की है कि 'सहज' उतना आसान नहीं है। सहज-सहज तो सभी कहते हैं, पर सहज को कोई पहचान नहीं पाता। 'सहज न चीन्हे कोइ'—चीन्हना अभिज्ञान-प्रत्यभिज्ञान है। वह, जिसे पहचानना है, पहले से विराजमान है, अपने ही भीतर, पर अज्ञान के कारण हम उसे भुला बैठे हैं। अब उसे चीन्ह लेना है। यही त्रिक-दर्शन का प्रत्यभिज्ञा-दर्शन है, जिसके उदित होने पर सम-रसता का साम्राज्य उतरता है। कबीर कहते हैं—

"इस 'सहज' (सहजावस्था) के अभिज्ञान की घोषणा तो सभी करते हैं, पर इसे कोई पहचानता नहीं है। यह 'सहज' ईश्वर की तरह अगम-अगोचर है। 'सहज' के सहारे जिन्होंने विष-वत् विषयों (इन्द्रिय-एषणा) को त्याग दिया है, वे स्वयं 'सहज' हो गए। यह 'सहज' सह-ज (सरलता, स्वभाव, ऋजुता, प्राकृतिकता) है। यह 'सहज स + ह + ज (स = साथ, ह = हठ-योग, ज = जप-योग) है। यह 'सहज' प्रयत्न और निष्प्रयत्न—दोनों प्रकार की साधना-प्रक्रिया है। गुरु-प्रसाद और ईश्वर-कृपा से शक्ति-पात हो जाए, तो सहजता उपलब्ध हो जाती है, या फिर साधना के सोपान पर चढ़ते-चढ़ते प्रयत्न-सातत्य-परिणामतः सहजता उतर आती है।

कबीर के वर्णन में 'सहज' विशेषण और संज्ञा दोनों है। वह क्रिया-विशेषण भी है, क्योंकि प्रक्रिया है। 'सहज' गुरु और गोविन्द दोनों हैं। यही स्व-भाव और अर्जित उपलब्धि दोनों है। जिसने पञ्चेन्द्रिय-वासना-बद्धता से ऊपर उठकर अपने को समाधिस्थ कर लिया है, वही 'सहज' (सहजावस्था को प्राप्त) है। 'सहज' के साधना-पथ पर चलते-चलते धीरे-धीरे (सहजे-सहजे) सुत (सन्तति और उसके प्रति मोह-ममता,) वित (धन और उसके वशीभूत कदाचार एवं अहङ्कार), कामिनी (पत्नी या कामाकर्षण-मयी नारी और उसके रूपाकर्षण की दुःखान्तता) तथा काम (वासना, जिसके वशीभूत होकर बन्धन बँधते हैं)—ये सभी तिरोभूत हो जाते हैं। फिर 'एकमेव राम' शेष बच रहता है। 'राम', जो एकमात्र रमणीय है। 'रमन्ते योगिनो यस्मिन् स रामः।' वही राम अकेला है। सभी द्वितीयताएँ अशाश्वत हैं। उस राम से एकाकार हो जाना ही सहजावस्था है। और फिर कबीर इसी भाव को शब्दान्तर से उपस्थित करते हैं—जिस भाव-तत्त्व या तत्त्व-भाव के सहारे हरि मिल जाता है, वही भाव-तत्त्व या तत्त्व-भाव 'सहज' है। यह 'सहज' ईश्वर से भी बड़ा है। इसी सहजावस्था को उपलब्ध होकर कबीर ने ईश्वर तक को अस्वीकार करने की महनीयता प्राप्त की थी—

कबिरा मन निर्मल भया, ज्यों गङ्गा का नीर। पाछे-पाछे हरि फिरै, कहत कबीर-कबीर ॥

लेकिन आज सहज ने अपने गौरवार्थ-सिद्धार्थ को खो दिया है। आज 'सहज' का अर्थ आसान भर है। कुछ मठों, विहारों और आश्रमों में कुछ सहजिया सन्त सहज-साधना में अन्तर्लीन भले हों, पर लोक-मानस 'सहज' को भूल बैठा है। आजकल मनोविज्ञान के प्राङ्गण में 'नार्मल' के लिए सहज और 'ऐबनार्मल' के लिए असहज शब्द का प्रयोग होता है।

बुद्ध ने 'मज्झिम निकाय' पर बल दिया है। 'मज्झिम निकाय' सहज-साधना की प्राथमिक परिकल्पना है। दोनों अतिशयताओं से दूर मध्यस्थ आचरण 'मज्झिम निकाय' है। मूलतः आलोचक और अन्ततः कवि आई० ए० रिचार्डस की एक कविता-पुस्तक 'गुडबाई अर्थ' १९५८ में प्रकाशित हुई, जिसकी आठवीं कविता 'मज्झिम निकाय' (मिडल पाथ—द मीन) पर है, जहाँ उन्होंने अपनी चिन्तन-चेतना से सहजावस्था का व्याख्यान किया है। उन्होंने भी कहा है कि यह 'सहज' बड़ा कठिन है।

'सहज' जितना भी आसान हो गया हो, पर जैसे-जैसे सभ्यता की परतें हमारी आत्मा पर पड़ती जाती हैं, हम अपनी मूल और 'सहज' चेतना-चिति को भुलाते जा रहे हैं। 'सहज' ही साधनीय है।

'मातृका आश्रम' और परम स्नेह-मयी माधवी मां

लगभग पाँच वर्ष पूर्व १६८५ में दिल्ली में एक अभूत-पूर्व संस्था 'मातृका आश्रम' की स्थापना दक्षिणपुरी में परम पूजनीया श्रीमती माधवी मां द्वारा की गई, किन्तु आपका निवास राजधानी में लगभग २० वर्ष पूर्व २३ मार्च, १६७० से ही रहा है। १६७७ में आपने 'मानव सेवा महल' की स्थापना जन - सेवा के उच्च लक्ष्य से प्रेरित होकर की थी। आपका उद्देश्य विश्व के मानव - समाज को 'सम-दल' की भावना से ओत-प्रोत करने का रहा है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कला और संस्कृति-सम्बन्धी 'कात्यायनी इंस्टीट्यूट', 'विद्या-पीठ', 'शिव इंस्टीट्यूट' जैसी अनेक संस्थाएँ आपने प्रारम्भ कीं और 'स्पेस टाइम' नामक एक पत्रिका का प्रकाशन भी किया। निस्सन्देह, एक दिव्य महिला ही इस प्रकार के बहुमुखी अभियान का सञ्चालन करने में समर्थ हो सकती है। पूजनीया माधवी मां के अब तक के जीवन की जो बातें प्रकाश में आई हैं, उनसे उनकी दिव्यता की ही पुष्टि होती है।

माधवी मां का जन्म ११ मई, मङ्गलवार, १६५४ को कलकत्ते में अलौकिक ढङ्ग से हुआ। बचपन से अध्यात्म के प्रति आपकी गहरी रुचि ही नहीं रही, बाल्यावस्था में ही ऐसी अनेक घटनाएँ भी हुईं, जिनसे आपके माता-पिता ही नहीं, सखी-सहेलियाँ और पास-पड़ोस के लोग भी चमत्कृत होते रहे।

शैशवावस्था में ही अपने माता-पिता के साथ आप 'तारा-पीठ' पहुँचीं, जहाँ वामा क्षेपा की सिद्ध परम्परा के शङ्करी बाबा ने आपको अपनी गोद में लेकर इष्ट-मन्त्र से दीक्षित किया। उनकी कृपा से आपको गौड़-क्रम और नील-क्रम की रहस्य-रूपी तान्त्रिक साधना का पूर्ण ज्ञान मिल गया।

बाद के जीवन में आपने १६७२ में गोमुख की यात्रा की और वहाँ गुफा-बाबा से कुण्डलिनी का ज्ञान प्राप्त करने के साथ ही वेदों, उपनिषदों एवं अन्य शास्त्रों की मर्मज्ञता अर्जित की। वैदिक पूजा-पाठ और योग-विद्या से अवगत हुईं।

कामाख्या-धाम के प्रख्यात कौलाचार्य पं० रमणीकान्त देव शर्मा 'सच्चिदानन्दनाथ' के भी सम्पर्क में आप आईं और उनसे तन्त्र के 'मिश्र क्रम' एवं 'चीन-क्रम' का ज्ञान प्राप्त किया।

कुरुक्षेत्र के प्रसिद्ध स्वामी केशवानन्द 'गीता-रत्न' के रत्सङ्ग-लाभ से आप वैष्णवाचार की मर्मज्ञा हुईं और गौराङ्ग महा-प्रभु जैसी सिद्धि प्राप्त की।

माधवी मां को कुल-परम्परा से बङ्गाल के प्रख्यात सन्त शहीद सैय्यद अली अख्तर की भी कृपा प्राप्त रही है। साथ ही बचपन से आप मदर टेरेसा के सेवा-कार्य से जुड़ी रही हैं। इस प्रकार इस्लाम एवं ईसाई धर्मों में आप सहज रूप से पारङ्गत होती गईं।

उक्त संक्षिप्त विवरण से पाठक अनुमान कर सकते हैं कि पूज्या माधवी मां का व्यक्तित्व एवं कृतित्व कितना विलक्षण रहा है। उसी विलक्षणता के अनुरूप ही आज दिल्ली के 'मातृका आश्रम' में हिन्दू-धर्म, बौद्ध धर्म, ईसाई धर्म, इस्लाम और सिक्ख—इन पाँच प्रमुख धर्मों को एक पूजा-स्थल पर एकत्र करने का महत्-प्रयास चल रहा है। दक्षिणेश्वर के विश्व-विख्यात परमहंस रामकृष्ण देव की सर्व-धर्म-साधना की ऐतिहासिक बात इस प्रयास से ताजी हो उठी है।

उक्त प्रयास की जानकारी सीमित लोगों को ही होगी क्योंकि 'मातृका आश्रम' का प्रचार-कार्य अंग्रेजी भाषा में होता रहा है। कदाचित् पहली बार राष्ट्र-भाषा हिन्दी में पूजनीया माधवी मां का सचित्र परिचय प्रकाशित करने का सौभाग्य 'चण्डी' पत्रिका को ही मिल रहा है। इसके लिए हम आश्रम के सचिव श्री ए० घोष एवं श्री आनन्दमय ब्रह्मचारी जी के हृदय से आभारी हैं, जिनकी कृपा से हमें वांछित विवरण चित्रों सहित प्राप्त हो सका।

अति विस्तृत एवं विज्ञान-सम्मत सर्व-जीव-हितकारी :

शाक्त-सम्प्रदाय

परमात्मा की 'शक्ति'-रूप से उपासना करने का जो उपासक-सम्प्रदाय है, उसे 'शाक्त' कहते हैं। परमात्मा के सान्निध्य को प्राप्त करने की विधि को 'उपासना' कहते हैं। उपासना 'योग'-मूलक है। इस कारण पहले योग का रहस्य समझने योग्य है।

'वेद' के 'ज्ञान-काण्ड' के अनुसार जीवात्मा और परमात्मा को एक समझने के प्रयत्न को—'ज्ञान-योग' कहते हैं। 'उपासना-काण्ड' के अनुसार चित्त की वृत्तियों का निरोध करके परमात्मा का साक्षात्कार करने को—'भक्ति-योग' कहते हैं और 'कर्म-काण्ड' के अनुसार उस सुकौशल-पूर्ण कर्म को—'कर्म-योग' कहते हैं, जिसके द्वारा वासना का नाश होकर—सब कर्म करता हुआ साधक भगवान् का सान्निध्य प्राप्त कर सके।

अति विस्तृत 'शाक्त'-सम्प्रदाय में इन तीनों योगों (ज्ञान, भक्ति, कर्म) का यथेष्ट सम्बन्ध रखा गया है।

वेद और शास्त्रों के अनुसार उपासना-विज्ञान का विस्तार बहुत अधिक है। १. निर्गुण उपासना, २. सगुण पञ्च-देवोपासना, ३. लीला-विग्रह-रूपी अवतार-उपासना—ये तीनों ही ब्रह्म-उपासना के अन्तर्गत हैं। इनके साथ ही ऋषि-देवता-पितरों की उपासना नित्योपासना के रूप में निर्दिष्ट है। इनके अतिरिक्त भूत-प्रेतादि शक्तियों की उपासनाएँ भी हैं।

इस प्रकार भारतीय ऋषियों द्वारा प्रतिपादित शास्त्रीय प्रणाली पृथ्वी की सभी श्रेणियों के उपासकों को तृप्त करके उनका अभ्युदय कराने में चिर-काल से समर्थ रही है।

'शाक्त'-सम्प्रदाय की शक्ति-उपासना ऊपर कथित प्रथम तीन श्रेणियों (निर्गुण, सगुण, विग्रह-रूपी) की उपासना-प्रणाली से सम्बन्ध रखती है। निर्गुण ब्रह्म की धारणा और निर्गुण ब्रह्म के आत्म-ध्यानादि द्वारा 'समाधि' की प्राप्ति करना अति कठिन है। भगवान् श्रीकृष्ण ने भी 'गीतोपनिषद्' में कहा है कि अव्यक्त की निष्ठा बड़ी ही कठिनता से प्राप्त होती है। इसी कारण सगुण पञ्च - देवोपासना और उनकी लीला-विग्रह-रूपी उपासना उपासकों के लिए परम हितकारी है।

उक्त उपासना-प्रणालियों में 'शाक्त-सम्प्रदाय' की साधना का अधिकार अति व्यापक होने से उसकी साधना-प्रणाली अति दूर-दर्शिता-पूर्ण है। उसके विचार विज्ञान-

सम्मत होने से 'शाक्त-सम्प्रदाय' का अधिकारी साधक-मण्डल बहुत ही महान् और सर्व-जीव-हितकारी है।

वाक् और मन से अतीत, निर्गुण, सम्पूर्ण ज्ञान और सम्पूर्ण शक्तियों का आधार-भूत 'परमात्मा' साधारण बुद्धि से अगम्य होने के कारण, उनके 'जगदाकर्षक तेज' का अवलम्बन करती हुई जो उपासना-प्रणाली प्रचलित है, उसे 'सूर्योपासना' कहते हैं।

'बुद्धि' का अवलम्बन कर परमात्मा की जो उपासना की जाती है, वह 'गाण-पत्य उपासना' कहलाती है।

परमात्मा की 'सत् सत्ता' का अवलम्बन करते हुए जो उपासना-प्रणाली बनी है, उसे 'शिवोपासना' कहते हैं।

परमात्मा की 'चित्-सत्ता' के अवलम्बन पर उपासना की जो प्रणाली शास्त्रों में है—उसे 'विष्णु-उपासना' कहते हैं।

परमात्मा की महा-शक्ति का अवलम्बन करते हुए जो उपासना-प्रणाली अति विस्तार से बनी है—वह 'शक्ति-उपासना' के नाम से प्रख्यात है।

द्वैत-प्रपञ्च ब्रह्म-शक्ति का ही विस्तार है। अनन्त-कोटि ब्रह्माण्ड को सृष्टि-लीला, में जहाँ देखिए, वहीं ब्रह्म-शक्ति-रूपिणी 'महा-शक्ति' का ही रूप देखने में आता है। उपासना के इस विस्तृत स्वरूप के अनुसार 'शक्ति-उपासना'-प्रणाली में उपास्य मूर्तियों के भी अगणित भेद पाए जाते हैं।

त्रि-भाव के अनुसार त्रि-विद्या की उपासना-प्रणाली, दश-विध अवतारों की शक्ति के विचार से दश-महा-विद्या की उपासना-प्रणाली, महा-शक्ति की चतुर्विध शक्ति-विभूति के अनुसार चौबीस प्रकार की ध्यान-प्रणाली, नव-दुर्गा की उपासना, सप्त-मातृकाओं की उपासना, चौंसठ योगिनियों की उपासना इत्यादि 'शक्ति-उपासना'-प्रणाली के विस्तार और उसके महत्त्व की सूचक हैं।

सौर्य्य-उपासक, गाणपत्य उपासक, शैव-उपासक और वैष्णव-उपासक-सम्प्रदायों में आचार एवं विचार के बहुत अधिक भेद नहीं माने गए हैं, परन्तु विलक्षण-विज्ञान-सम्मत शाक्त उपासना-प्रणाली में 'आचार-धर्म' और 'विचार-धर्म' विविध के भेद उपासक की पात्रता के आधार पर अनेक प्रकार बताए गए हैं, जिससे यह सम्प्रदाय सब श्रेणी के अधिकारियों को 'अभ्युदय' और 'निःश्रेयस'—'भोग' और 'मोक्ष' दोनों प्रदान करने में सक्षम है।

'शाक्त-सम्प्रदाय' के विभिन्न आचारों में तीन आचार मुख्य हैं—१ दक्षिणाचार, २ वामाचार और ३ दिव्याचार।

वेद और वेद-सम्मत शास्त्रों की आज्ञाओं को अक्षरशः मानकर उनके अनुसार उपासना करने को 'दक्षिणाचार' कहते हैं। दक्षिणाचारियों के लिए वेद, स्मृति, पुराण और तन्त्र माननीय हैं तथा उनके अनुसार धर्म-साधन एवं आचार-पालन ही साधारणतया विहित है। इसी कारण शाक्त-सम्प्रदाय की यह साधन-प्रणाली 'दक्षिणाचार' कहाती है।

'वामाचार' के धर्माधर्म-निर्णय और आचार-अनाचार-निर्णय करने के विषय में उनकी उपास्य देवी सर्व-शक्ति-मयी ब्रह्म-रूपिणी जगदम्बा ही प्रधान स्रोत मानी गई हैं। इस आचार के अनुसार श्रीजगदम्बा के प्रीत्यर्थ जो साधना की जाती है, उसे 'यज्ञ' कहते हैं। जैसे कि 'श्रीमद्-भगवद्-गीता' में अनेक प्रकार के यज्ञों का वर्णन है।

इस आचार के अनुसार श्रीजगदम्बा के सत् और चित्-रूपी चरणों में अर्पण करने के लिए ही 'यज्ञ' किए जाते हैं।

'दिव्याचार' का महत्त्व कुछ और ही है। इस आचार का तात्पर्य यह है कि श्रीजगदम्बा के चरणों में अनन्य श्रद्धा-युक्त परा-भक्ति का अधिकारी ज्ञानी भक्त ऊपर कथित दोनों आचारों में भेद-बुद्धि न रक्खे और यह समझे कि व्यक्ति-गत साधना-स्तर में यथा-योग्य अधिकार के अनुसार 'कर्म' करना ही श्रेयस्कर है तथा सिद्धावस्था-प्राप्ति के लिए सभी अवस्थाओं में 'चित्त की समता' ही मुख्य कारण है।

वस्तुतः, यदि दार्शनिक दृष्टि से देखा जाय, तो क्या वैदिक मार्ग और क्या वैदिकेतर मार्ग तथा क्या ऊपर कथित विविध प्रकार की उपासना-प्रणालियाँ—सभी के साधक शक्ति-मान् ब्रह्म की सर्व-शक्ति-मयी ब्रह्म-शक्ति—जगज्जननी का आश्रय लिए बिना उपासना कर ही नहीं सकते।

जब तक साधक को स्व-स्वरूप की उपलब्धि न हो और वह अध्यात्म-रूप, अधि-दैव-रूप, अधिभूत-रूप और अधियज्ञ-रूप को समझने में समर्थ न हो, तब तक उसे 'महा-शक्ति' के किसी 'भाव'-मय-रूप, उसके किसी 'वृत्ति'-मय-रूप, किसी 'गुण'-मय-रूप अथवा 'चित्त' के किसी स्थूल दृश्य का अवलम्बन करके ही उपासना करनी पड़ेगी। ये सभी अवलम्ब ब्रह्म-मयी महा-शक्ति के ही विलास हैं।

शाक्त-सम्प्रदाय की महत्ता

'शाक्त-सम्प्रदाय' अनादि काल से इस पुण्य भूमि भारत में प्रचलित है। शास्त्रीय प्रमाणों से सिद्ध है कि 'शाक्त-मत' वैदिक-काल में ही प्रौढ़ावस्था को प्राप्त हो चुका था। 'शक्ति' की उपासना उपनिषद्-काल तथा पौराणिक-काल में पर्याप्त रूप में प्रचलित थी।

'शक्ति-उपासना' के तीन भेद हैं--१ दक्षिण, २ वाम और ३ दिव्य। दिव्य-उपासना में जब मनुष्य पहुँचता है, तब उसे अणिमा आदि अष्ट-सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं, जिससे वह अपने स्वरूप को अणु से भी अणु बना सकता है। उदाहरणार्थ दिव्य-उपासना से सम्पन्न महा-वीर हनुमान जी में अणिमादिक शक्तियाँ थीं।

दुर्लभ दिव्य उपासना के अतिरिक्त शाक्तों में दो प्रकार के अन्य उपासक देखे जाते हैं। 'दक्षिण-मार्ग' से उपासना करनेवाले और 'वाम-मार्ग' से उपासना करनेवाले। 'दक्षिण-मार्ग' के उपासकों में जहाँ आत्म-समुन्नति, सुख-धन, कुटुम्ब-प्रतिष्ठादि समृद्धि होती है, वहीं 'वाम-मार्ग' के साधक सविधि उपासना करते हुए अपने तथा दूसरों के इष्ट-साधन करने में समर्थ होते हैं।

काल के क्रम से इस 'शाक्त'-मत में कुछ दम्भी, ढोंगी, लोलुप उत्पन्न हो गए। इन सबने अवैध ढङ्ग से मांस-मदिरा का सेवन करते हुए शुद्ध 'शाक्त-मत' को कलङ्कित कर दिया। तब इस दम्भ और अनाचार को रोकने की आवश्यकता का अनुभव करके जगदम्बा भगवती ने भगवान् महा-वीर एवं गौतम बुद्ध को उत्पन्न किया, जिन्होंने सर्वतोभाव से जीव-दया के सिद्धान्त का प्रचार करके हिंसा को रोका। इस प्रकार अवैध दाम्भिकों का ह्रास हुआ और जैन एवं बौद्धों का युग आया। शाक्त-मत उनके यहाँ भी था, जिसे हम आगे दर्शाएँगे।

उस समय वैदिक-स्मार्त और शाक्त-धर्म के उपासक प्रभात-काल के नक्षत्रों की तरह कहीं-कहीं ही रह गए थे। तदनन्तर श्री शङ्करावतार आदि शङ्कराचार्य जी का आविर्भाव हुआ। उन्होंने बौद्धों से शास्त्रार्थ करके 'ईश्वर-सिद्धि' तथा अद्वैत-सिद्धान्त' की स्थापना की और भारतवर्ष में वैदिक सिद्धान्तों को पुनः प्रतिष्ठित किया। इन्हीं शङ्कराचार्य की परम्परा में प्राप्त 'अपराध-क्षेमापन-स्तुति' में भगवान् शङ्कर के ध्यान द्वारा क्या ही उत्तम प्रकार से 'शक्ति' की प्रधानता दिखाई गई है--

आपके शरीर पर चन्दनादि नहीं, चिता - भस्म का आलेप है, भोजन आपका भाँग, धतूरा, आदि विष हैं, वस्त्र आपके दिशाएँ हैं, शृङ्गार जटाएँ हैं--जिन्हें मस्तक पर धारण किए हैं और कण्ठ में महा-विष-धर सर्पाधिराज विद्यमान हैं। पशु-पति--पशुओं के अधिपति, कपाली--कपाल या खोपड़ी धारण करनेवाले और भूत, प्रेत इत्यादि आपके अनुचर हैं! इस प्रकार की अप-रूपता से युक्त होने पर भी आप समस्त संसार के अधिपति हैं, सभी देवों से श्रेष्ठ हैं--क्योंकि आपने भवानी आद्या शक्ति का पाणि-ग्रहण किया है।"

बौद्धों का ह्रास होने के बाद जैन, रामानुज, वल्लभादिक सम्प्रदाय शाक्त-सम्प्रदाय के वैज्ञानिक स्वरूप को न समझकर हिंसादि आक्षेपों से उसकी निन्दा करने लगे और शाक्त-सिद्धान्त से सर्वथा विमुख रहे। ये जैन, रामानुज, वल्लभादि सम्प्रदाय अधिकतर वैश्यों में पाए जाते हैं, अतएव उनके सान्निध्य और अधिक संसर्ग के कारण स्मार्त्त सनातन-धर्म को मानते हुए भी गौड़ ब्राह्मणों में शाक्त-सम्प्रदाय

का विरोध रहा। इन लोगों ने इसके रहस्य को जानने की न इच्छा की और न ही स्मृति आदि प्रमाणों की ओर ध्यान दिया।

शाक्त-विद्वानों ने भी उक्त सम्प्रदाय-भक्तों की उपेक्षा-बुद्धि देखकर वेद, उपनिषद्, स्मृति आदि प्रमाणों से सिद्ध शाक्त-सिद्धान्तों को समझाने का प्रयत्न नहीं किया। इस प्रकार शाक्त-सिद्धान्तों और रामानुजादि सम्प्रदायों में अन्तर बढ़ता ही गया।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि पाश्चात्य शिक्षा से प्रभावित होकर कुछ भारतीय 'शाक्त-सिद्धान्त' को आधुनिक-कालीन मानते हैं, जो सत्य नहीं है। वेदों में शाक्त-सिद्धान्तों के सूत्रों की प्रामाणिकता को पाश्चात्य विद्वानों ने भी स्वीकार किया है। इसके अतिरिक्त वाल्मीकीय रामायण में रामचन्द्र-कृत देवी-स्तुति, महाभारत तथा अन्य पुराणों में भगवती-स्तुति का समावेश प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

जापान के 'होरि उजी' मठ में 'उष्णीष विजय-धारिणी' नामक तान्त्रिक पुस्तक ताल-पत्र में लिखी मिली है, जो छठी सदी में भारत से जापान लाई गई थी। इससे स्वतः सिद्ध है कि भारत में पाँचवीं सदी में शक्ति की उपासना पर्याप्त रूप में प्रचलित थी।

दाक्षिणात्य पूर्व-तन कदम्ब-वंशीय लोग 'सप्त-मातृका' के विशेष उपासक थे। पूर्व-तन चालुक्य राजाओं की पूज्या 'सप्त-मातृका' देवियाँ ही थीं।

मालव-पति विश्वकर्मा के ४८० सम्वत् में उत्कीर्ण शिला-लेख में लिखा है—

मातृणां च प्रमुदित-घनात्यर्थ - निर्ह्लादिनीनाम् ।
तन्त्रोद्भूत - प्रबल - पवनोद्वर्त्तिताम्भोनिधीनाम् ।।

इत्यादि प्रमाणों से सिद्ध है कि उस समय भगवती की उपासना प्रचलित थी। गुप्त-सम्राट स्कन्द-गुप्त भगवती के भक्त थे, यह बात उनके शिला-लेखों से स्पष्ट है। शाक्त-धर्म का व्यापक प्रचार इससे पहिले भी था। 'मृच्छकटिक नाटक' का मङ्गलाचरण भी प्रमाण के रूप में उद्धृत किया जा सकता है, जिसमें नील-कण्ठ भगवान् के कण्ठ में गौरी भगवती की भुज-लता विद्युल्लेखा के समान शोभायमान वर्णित है। इसी प्रकार 'रघु-वंश' में भी गौरी-शङ्कर के सम्मिलन का वर्णन है।

बौद्ध-धर्मावलम्बियों की अन्य शाखाओं के विपरीत होते हुए भी महायान-मतावलम्बी बौद्धों में 'शक्ति' की पूजा ही प्रचलित थी। महायान-मतावलम्बी शाक्ताधिप कनिष्क का राज्य—उत्तर में मङ्गोलिया, दक्षिण में विन्ध्याचल, पूर्व में बङ्गाल के समुद्र और पश्चिम में ईरान तक विस्तृत था। उसके प्रयत्न से उसके राज्य के अधिकांश में महायान-मत प्रचलित था। महायान-मत में 'शक्ति' की पूजा का विधान होने के कारण इसका सर्वत्र प्रचार था। महायान-मत के प्रवर्तक आचार्यों को शाक्तों ने अपना सिद्धान्त समझा कर शाक्त बना लिया था, जिससे वह शाक्त-मत की सिद्धियों के साथ अपने मत को व्यापक बनाने में कृत-कार्य हुआ था।

नेपाली बौद्धों के 'साधन-माला' तन्त्र में जरा-साधन-प्रसङ्ग में उल्लेख है कि—

'आर्य-नागार्जुन-पादैर्मोहैः समुद्धता।'

अर्थात्—महा-यान मत के प्रतिष्ठापक आर्य नागार्जुन भोट देश से 'जरा'-नाम्नी तारा देवी का उद्धार करके लाए थे।

उन्हीं के 'स्वतन्त्र-तन्त्र' में भी लिखा है--

'मेरोः पश्चिम-कुले तु, चोल-नारको ह्रदो महान् ।
तत्र जज्ञे स्वयं तारा, देवी नील-सरस्वती ।।'

अर्थात्--मेरु पर्वत के पश्चिम किनारे पर चोलनारक जलाशय में तारा देवी स्वयं प्रकट हुईं।

उक्त प्रमाणों से सिद्ध है कि महा-यान बौद्धों में शक्ति को उपासना प्रचलित थी। इस प्रकार परम प्राचीन वैदिक-काल तथा उपनिषद्, महा-भारत और पुराण-काल में तथा अर्वाचीन बौद्ध आदि के काल में भी शाक्त-सम्प्रदाय सर्वत्र प्रचलित रहा है।

• • •

शक्ति-योग

करो 'साहं - साहं' उच्चार, यही है सब वेदों का सार (टेर)

'सोहं-सोहं' यह न सही है, क्योंकि ब्रह्म पुलिङ्ग नहीं है।
जीव-धारा प्रकृति कही है, सम्वित् वा चेतना यही है।
जो कहते हैं ब्रह्म से शक्ति प्रकृति हैं भिन्न।
वे झूठे हैं सर्वथा उनको मति है भिन्न ।।

जचाओ मन में तत्त्व-विचार, करो 'साहं-साहं' उच्चार, यही है सब वेदों का सार ।।१

हृदय से पक्ष - पात तोड़ो, भेद - भावों से मुख मोड़ो।
न ऊपर - ऊपर ही दौड़ो, तत्त्व शास्त्रों का मत छोड़ो।
जो रहती है ब्रह्म में, परा - शक्ति चिद्रूप।
करके साहं नाद तुम वह ही बनो अनूप ।।

न पाओ जिससे कभी विकार, करो 'साहं-साहं' उच्चार, यही है सब वेदों का सार ।।२

जीव जो श्वासों को भरता, उन्हीं से ध्वनि जो उच्चरता।
मोक्ष - हित अजपा - जप करता, हं बाहर सा भीतर धरता।
उल्टा 'हंसा' मन्त्र है, 'साहं' सीधा जाप।
अर्थ यही है मैं वही, सम्वित्-रूपी आप ।।

वही है सब जग की आधार, करो 'साहं-साहं' उच्चार, यही है सब वेदों का सार ।।३

जगत् से ब्रह्म जुदा रहता, विलग ज्यों जल से जलज यथा।
क्रिया से हीन वही है यों, अचेतन अक्रिय रहती ज्यों।
उसकी ही चित्-शक्ति है उसमें रहती लीन।
जो न तत्त्व यह जानता वही ज्ञान से हीन ।।

कहा हरि हर ने है यह सार, करो 'साहं-साहं' उच्चार, यही है सब वेदों का सार ।।४

शक्ति की आराधना

सनातन-धर्मी जितने स्मार्त्त हैं, मैं समझता हूँ कि वे सभी 'शाक्त' ही हैं, कारण जो कोई भी अपना नित्य-कर्मानुष्ठान प्रति-दिन करते हैं, वे प्रारम्भ में 'सन्ध्या-वन्दन' में गायत्री देवी का ध्यान-पूजन अवश्य करते हैं।

शाक्ता एव द्विजाः सर्वे न शैवा न च वैष्णवाः,
उपासन्ते यतो देवीं गायत्रीम् वेदमातरम् ॥

अर्थात्--द्विज मात्र शाक्त हैं, न कि शैव या वैष्णव। कारण वे सन्ध्योपासना में गायत्री देवी का ध्यान-पूजन प्रति-दिन करते हैं।

'उपासना'-मार्ग में जो उपासना-प्रणाली है, वह 'भक्ति' और 'ज्ञान' के रूप में द्वि-विध है। सर्व-प्रथम भक्ति ही उपासक के हृदय में जागरित होती है। तब निश्चयात्मिका बुद्धि द्वारा अन्तःकरण में भक्ति स्थायी होती है। वह निश्चयात्मिका बुद्धि (गायत्री) हीं जगन्मोहन - कारिणी देवी ईश्वरी हैं। इनकी असीम कृपा से जड़-भावापन्न अन्ध-जीव मोह से आवृत जाल को भेद कर दिव्य दृष्टि-सम्पन्न होता है।

अनिवर्चनीया मूल 'प्रकृति' और उसके तीन गुण

'वेदान्त'-शास्त्र में कहा गया है कि मूल 'प्रकृति', परमेश्वर-शक्ति, अनादि, अविद्या, त्रि-गुणात्मिका, परमा-माया द्वारा इस निखिल ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति होती है। अपने लीला-वैचित्र्य से यह तत्त्व-दर्शी आचार्य विद्वानों द्वारा पहचानी जाती है। सत्त्व, रज व तमो-गुणात्मिकता यह परमा माया सत् या असत् इन दोनों के अन्तर्भूत नहीं है। यह अत्यन्त विलक्षण-रूपिणी, अनिर्वचनीया है।

दूसरे शब्दों में सृष्टि-स्थिति-प्रलय-कारिणी 'आद्या शक्ति' अलौकिक-रूपा हैं। यह विश्व-ब्रह्माण्ड उन्हीं से उद्भूत है। उन्हीं में स्थित है और उन्हीं में लय को प्राप्त होता है। इसी प्रकार आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक—तीनों प्रकार के जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय के एक-मात्र कारण मूल प्रकृति के तीन गुण--१ सत्व, २ रज और ३ तम ही हैं।

रजो-गुण का धर्म और क्रिया

रजो-गुण का धर्म और क्रिया 'विक्षेप-शक्ति' है। 'विक्षेप-शक्ति' से संसार में प्रवृत्ति, विषयों में अनुरागादि व दुःखादि मनो-विकारों की उत्पत्ति होती है। काम, क्रोध, लोभ, दाभ, अहङ्कार, ईर्ष्या, मात्सर्य आदि रजो-गुण के घोर-तर धर्म हैं। रजो-गुण से पुरुष की प्रवृत्ति उपजती है और यही बन्धन का एक-मात्र कारण है।

तमो-गुण का धर्म और क्रिया

इसी प्रकार 'आवरण-शक्ति' तमो-गुण की क्रिया है। तमो-गुण की शक्ति के प्रभाव से ही एक वस्तु अन्य वस्तु के रूप में प्रतिफलित होती है, जो सांसारिक बन्धन का मुख्य कारण है। प्रज्ञावान, चतुर एवं अति सूक्ष्म-दर्शी पण्डित-गण सर्वज्ञ होने पर भी तमो-गुण से आवृत्त होने पर प्रकृत वस्तु का अनुभव

करने में समर्थ नहीं होते। भ्रम से आरोपित वस्तुओं को सत्य-वत् मानकर उनके गुणों को ही वे ग्रहण करते हैं। तमो-गुण की 'आवरण-शक्ति' की ऐसी ही विलक्षण माया है। अज्ञान, आलस्य, जड़ता, निद्रा, प्रमाद और मूढ़ता—ये सब तमो-गुण के धर्म हैं।

सत्व-गुण का धर्म और क्रिया

सत्त्व-गुण जल-वत् स्वच्छ, सत्य और शुद्ध है, परन्तु वह रजो-गुण एवं तमो-गुण के साथ मिलकर लोक में प्रतिफलित होता है। सूर्य जैसे ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करता है, वैसे ही आत्मा सत्त्व-गुण में प्रतिबिम्बित होकर समस्त जड़-वस्तु को प्रकाशित करता है। यम-नियमादि, स्व-मानितादि, श्रद्धा, भक्ति, मुमुक्षुता और दैवी सम्पत्ति तथा असत् कर्म से विरति—ये सब मिश्रित सत्त्व-गुण के धर्म हैं।

प्रसन्नता, आत्मानुभूति, परम शान्ति-भाव, तृप्ति, हर्ष और आत्म-निष्ठा—ये सब विशुद्ध सत्त्व-गुण के धर्म हैं। यह तो हुआ सत्त्व, रजः और तमः—इन तीनों गुणों की क्रिया और धर्म का वर्णन।

अलौकिकी शक्ति परा-प्रकृति में नित्य अधिष्ठित अष्ट-सिद्धियाँ

इन तीन गुणों की जो साम्यावस्था है, वही 'परा-प्रकृति' का स्वरूप है। इन परा-प्रकृति महा-माया को अलौकिकी शक्ति कहते हैं, क्योंकि--

अणिमा लघिमा प्राप्तिः प्राकाम्य-महिमा तथा ।
ईशित्वञ्च वशित्वञ्च तथा काम - वसायिता ।।

अर्थात्--१ अणिमा, २ लघिमा, ३ प्राप्ति, ४ प्राकाम्य, ५ महिमा, ६ ईशित्व, ७ वशित्व और ८ काम-वसायिता—ये सब आद्या-शक्ति महा-माया की स्वाभाविक अष्ट-सिद्धियाँ हैं। १ अणिमा-अणुत्व, अतीन्द्रिय-सूक्ष्मत्व। २ महिमा—महत्त्व। ३ लघिमा—लघुत्व। ४ प्राप्ति—समस्त प्राणियों की इन्द्रियों की अधिष्ठात्री देवता। ५ प्राकाम्य—सुनना, देखना इत्यादि समस्त विषयों का उपभोग। ६ ईशित्व—शक्ति-प्रेरण अर्थात् ब्रह्माण्ड के प्रत्येक जीव के प्रति अपनी माया का विस्तार। ७ वशित्व—गुण में असङ्ग; सत्त्व-रज -तमः—इन तीनों गुणों में निर्लिप्तता। ८ कामावसायिता—काम अथवा इच्छा का अवसायित्व अर्थात् मैं जो कुछ भी सुख-कामना करता हूँ, उसका 'अवसान'—शेष सीमा को प्राप्त होना। ये अष्ट-सिद्धियाँ जिनमें नित्य अधिष्ठित रहती हैं, वे ही ईश्वर या ईश्वरी--भगवान् या भगवती हैं।

शक्ति-आराधना का रहस्य

अष्ट-सिद्धि-युक्त आद्या-शक्ति परा-प्रकृति के बिना सब अशक्त हैं। उदाहरणार्थ देखिए हम लोग जो अक्षर उच्चारण करते हैं, उसके लिए भगवान् श्रीकृष्ण 'गीता' में कहते हैं—अक्षरों में मैं 'अ'कार हूँ। 'अ'कार स्वर-वर्ण को 'शक्ति' कहते हैं। वह 'शक्ति' का रूप है। ककारादि व्यञ्जन - वर्णों को 'शिव'-रूप कहते हैं। जब तक स्वर-वर्ण व्यञ्जन-वर्ण के साथ नहीं मिलता, तब तक उसका उच्चारण नहीं हो सकता। 'स्वर'-वर्ण स्वतः उच्चारित हैं, क्योंकि 'शक्ति'-रूप है, स्वयं ही स्रष्टा है। व्यञ्जन वर्ण क्रिया-रहित 'शिव'-रूप हैं।

इस तरह प्रत्येक वस्तुयें और प्राणी-मात्र समस्त पदार्थ 'शक्ति'-मय हैं और 'शाक्त' हैं। इसलिए मैं बार-बार यही कहूँगा कि—'शक्ति ही आधार है, 'शक्ति की आराधना' बिना कुछ भी नहीं हो सकता क्योंकि यह जगत् 'शक्ति-मय' है।

• • •

सनातन
शाक्त-धर्म

सनातन शाक्त-धर्म के उपदेश-कर्त्ता

शाक्त-धर्म सनातन धर्म है। इसका उपदेश महेश ने सृष्टि के प्रारम्भ में लोक-कल्याण के लिए किया था। निष्कल ब्रह्म ने सकल ब्रह्म का रूप धारण करके, इस ब्रह्माण्ड का अपनी इच्छा-शक्ति द्वारा उद्‌भव किया था। उसी की इच्छा-शक्ति के परिणाम-स्वरूप ब्रह्मा, विष्णु, महेश की उत्पत्ति हुई। उनको अपने-अपने कार्य में सक्षम रखने के लिए, उसने ब्रह्मा को सरस्वती की शक्ति, विष्णु को लक्ष्मी की शक्ति प्रदान की। महेश के लिए स्वयं सकल की शक्ति काली-रूप से स्थित हुई। सकल का पुरुष 'शक्ति' के अभाव में अन्तर्धान हो गया। इसी त्रि-मूर्ति ने ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, स्थिति और लय के उत्तर-दायित्व को अपने ऊपर लिया। सकल ब्रह्म की इच्छा, क्रिया और ज्ञान की शक्तियाँ उसकी इन तीनों विभूतियों में समाविष्ट हो गईं।

फलतः सृष्टि की रचना होने पर उसके सुचारु रूप से सञ्चालन के लिए ब्रह्मा ने वेदों का प्रादुर्भाव किया। कालान्तर में जब वेद की पद्धति के अनुसार समाज का सञ्चालन होने लगा, तब उसके नियमों की कठोरता का समाज ने अनुभव किया। ऐसे ही लोगों के परित्राण के लिए महेश ने अपनी ज्ञान-शक्ति के द्वारा योग और तान्त्रिक साधनाओं का उपदेश किया।

ज्ञान की प्रतीक दश-महा-विद्याओं की उत्पत्ति

एक समय शङ्कर अपने को अधिक प्रबुद्ध समझकर ऐसे भाव में आ गए कि उन्होंने अपनी अर्द्धाङ्गिनी काली-शक्ति को अपने लिए बन्धन समझा। उस समय वे ध्यानस्थ एक शिला-खण्ड पर अपनी अर्द्धाङ्गिनी काली के साथ समासीन थे। उक्त भाव के उठते ही वे एका-एक उठकर खड़े हो गए और एक ओर को चल दिए। काली ने कहा—कहाँ चले ?

उत्तर मिला—जहाँ इच्छा होगी ।

काली चुप हो रहीं, परन्तु महेश जिस दिशा की ओर बढ़े, उन्होंने उसी दिशा में एक भव्य देवी-मूर्ति को खड़े पाया । दशों दिशाओं में जाने पर जब उन्होंने दश देवियों के स्वरूपों का दर्शन किया, तब उन्हें वास्तविक प्रबोध हुआ । वे लौट पड़े और काली के पास आए । उन्होंने विनय-पूर्वक कहा कि 'तुम्हारी लीला अपार है !'

काली कुछ नहीं बोलीं ।

महेश की भ्रान्ति दूर हुई थी और उन्हें वास्तविक ज्ञान का प्रकाश प्राप्त हुआ था । अतएव उन दस स्वरूपों को उन्होंने दश-महा-विद्याएँ कहकर सम्बोधित किया और उनकी मन्त्र-प्रक्रिया की साधना का अधिकारियों को उपदेश किया । वे ज्ञान की प्रतीक मानी गईं ।

प्रजापति दक्ष और महेश का संघर्ष

इस प्रकार महेश ने इन दस-महा-विद्याओं द्वारा अर्थात् ज्ञान के इन दस प्रतीकों द्वारा अनूठे शाक्त-धर्म को जन्म दिया । अधिकारियों ने उसे ग्रहण कर उसके द्वारा अपने कल्याण के मार्ग को प्रशस्त किया । बाद को जब 'काली'-शक्ति ने प्रजा-पति दक्ष की कन्या बनकर सती के रूप में महेश का पाणि-ग्रहण किया, तब इस सम्बन्ध के हो जाने पर प्रजापति दक्ष को इस बात का ज्ञान हुआ कि महेश पृथक्-रूप से योग और मन्त्र-प्रक्रिया का प्रचार करते हैं । उनका रहन-सहन और उनका आचार भी प्रजापति को रुचिकर नहीं जँचा । उन्होंने समझा कि महेश के प्रचार-कार्य से वैदिक आचार-विचारों को व्याघात पहुँचेगा । भेंट होने पर प्रजापति होने के कारण उन्होंने महेश को बुरा-भला कहा । उन्होंने कहा कि—'तुम्हारा प्रचारित यह धर्म संसार में निन्दित होगा ।'

यही नहीं, वे इतना रुष्ट भी हो गए कि अपने घर में एक यज्ञ करके उन्होंने महेश को उसमें आमन्त्रित नहीं किया और न यज्ञ में भाग ही दिया, परन्तु यज्ञ होने की खबर पाकर पुत्री होने के नाते, बिना आमन्त्रण पाए, हठ-पूर्वक सती पिता के घर अपने आप ही जा पहुँचीं । उनका वहाँ कोई आदर नहीं हुआ और जब उन्होंने देखा कि उनके पति को यज्ञ का भाग नहीं दिया गया है, तब वे क्रोध से अभिभूत हो गईं और अपने आपको योगाग्नि में भस्म कर दिया । इस घटना की कथा पुराणों में लिखी हुई है ।

इसी घटना के फल-स्वरूप उत्तर भारत के इक्यावन स्थानों में इक्यावन 'शक्ति-पीठ' स्थापित हुए और शाक्त-धर्म का प्रचार बढ़ गया । वैदिक धर्म के साथ-साथ वह

उसके पूरक धर्म के रूप में प्रचलित हो गया। बड़े-बड़े ऋषियों-मुनियों, राजाओं-महाराजाओं और साधारण जनों ने महेश द्वारा प्रचारित तान्त्रिक साधनाओं को ग्रहण कर अपना कल्याण किया। इन सबकी कथाओं से पुराण-ग्रन्थ ओत-प्रोत हैं।

धर्म-ग्लानि-रूपी कलियुग हेतु 'तन्त्र-धर्म' का उपदेश

सत्य, त्रेता और द्वापर तक ये दोनों ही धर्म सारे देश में लोक का सङ्गठन और कल्याण करने में पूर्ण रूप से सक्षम रहे। द्वापर के बाद जब कलि का प्रवेश हुआ और महाराज पाण्डु के पौत्र महाराज जनमेजय ने जब नाग-यज्ञ का समारम्भ किया, तब एक विशेष स्थिति के उत्पन्न हो जाने पर उन्हें यज्ञ को अधूरा ही छोड़ देना पड़ा। इस पर अग्नि-देव कुपित हुए और उन्होंने प्रकट होकर ब्राह्मणों को शाप दिया कि—'आज से तुम लोगों द्वारा किए गए सभी यज्ञादि कर्म निष्फल होंगे।'

अग्नि-देव के शाप का प्रभाव पड़ा। धीरे-धीरे देश में धर्म-ग्लानि की स्थिति आ गई। यज्ञ-यागादि बन्द होने लगे। इस दुरवस्था को देखकर महेश की अर्द्धाङ्गिनी पार्वती जी ने उनसे आग्रह किया कि—'इस धर्म-ग्लानि में फँसे हुए लोगों के उद्धार का कोई मार्ग आप निश्चित करें।'

इस पर महेश ने 'तन्त्र-धर्म' का उपदेश किया। शङ्कर के उपदिष्ट तन्त्र 'आगम' कहलाए। पार्वती द्वारा उपदिष्ट तन्त्र 'निगम' के नाम से प्रसिद्ध हुए। इन दोनों के सम्वाद-रूप में जो अन्य तन्त्र उपदिष्ट हुए, वे 'यामल-डामर' के नाम से प्रसिद्ध हुए। ऋषियों ने इनको सुनकर इन्हें ज्यों-का-त्यों लिपि-बद्ध कर लिया।

शाक्त-धर्म इन्हीं चार श्रेणियों के तन्त्र-ग्रन्थों पर आधारित है। शाक्त-धर्मानुयायी इन्हीं के द्वारा निर्दिष्ट पद्धति के अनुसार अपना यजन-भजन करते हैं। उस समय की चलाई हुई वह यजन-पद्धति आज तक ज्यों-की-त्यों देश में शाक्त-धर्मानुयायियों में प्रचलित है।

शाक्त-धर्म के अर्चन की प्रक्रिया का महत्त्व

जैसा कि ऊपर कह आए हैं, शाक्त-धर्म महेश के कहे हुए आगम, निगम, यामल आदि पवित्र-तम ग्रन्थों पर आधारित है। इन ग्रन्थों में शाक्त-धर्म की साधना की अनेक प्रक्रियाएँ बताई गई हैं। इन प्रक्रियाओं में शाक्त-धर्म की अर्चन की प्रक्रिया अपना विशेष महत्त्व रखती है। उसकी विशेषता यही नहीं है कि उसकी साधना से साधक को परमानन्द की उपलब्धि हो जाती है, किन्तु यह भी है कि आज भी वह सारे शाक्त-समाज में ज्यों-की-त्यों पहले की भाँति प्रचलित है।

शाक्त-धर्म में दश महा-विद्याओं की उपासना की प्रधानता है। ये महा-विद्यायें ज्ञान की प्रतीक हैं। इनके स्थूल स्वरूपों के नाम—१ काली, २ तारा, ३ त्रिपुर-सुन्दरी, ४ भुवनेश्वरी, ५ त्रिपुर-भैरवी, ६ धूमावती, ७ छिन्नमस्ता, ८ बगला, ९ मातङ्गी और १० कमलात्मिका हैं। इनका अर्चन-विधान भी अपनी विशेषता रखता है।

यह विधान तन्त्र की पञ्च-शुद्धियों के सिद्धान्त पर आधारित है—१ स्थान-शुद्धि, २ देह-शुद्धि, ३ द्रव्य - शुद्धि, ४ देव - शुद्धि और ५ मन्त्र - शुद्धि। इन्हीं पञ्च-शुद्धियों को आधार मानकर इस अर्चन-विधान का विस्तार किया गया है।

जो व्यक्ति शाक्त-साधना की दीक्षा ग्रहण करता है, उसको अपने इष्ट का यजन-पूजन इसी अर्चन-विधान के अनुसार करना पड़ता है। तन्त्रों में अर्चन की अनेक विधियाँ बताई गई हैं, परन्तु इन सबसे यह 'पञ्च-शुद्धयात्मक अर्चन' अपना विशेष महत्त्व रखता है।

महाराज जनमेजय के बाद जब महेश्वर ने आगमादि का प्रादुर्भाव किया, तब से यह पञ्च-शुद्धयात्मक अर्चन-क्रम भारत की इस पवित्र भूमि में आज तक अपने अक्षुण्ण रूप में विद्यमान है। शाक्त-साधक उसमें किसी प्रकार का हेर-फेर करने का दुस्साहस कभी नहीं करते और यथा-सम्भव यथा-शक्ति इसी अर्चन-विधान के अनुसार अपने इष्ट का यजन-पूजन करते रहते हैं।

'पञ्च-शुद्धयात्मक पूजन' (अर्चन-विधान) की मुख्य विशेषता यह है कि इस अर्चन-विधान में गुरुदेव साधक को उपनीत कर उसे देव-कक्ष में स्थापित होने का सन्मार्ग प्रदर्शित करते हैं। गुरुदेव से उपदिष्ट होकर साधक देव-भाव में भरकर अपने अर्चन-क्रम में अग्रसर होता है। वह स्नानादि कर शुद्ध होकर अत्यन्त विशुद्ध पूजा - गृह में प्रवेश कर मन्त्रों द्वारा उस विशुद्ध 'पूजन-स्थान का शोधन' करता है। फिर आसन पर आसीन होकर प्राणायाम तथा भूत-शुद्धि की क्रिया से अपने 'शरीर का शोधन' करता है। फिर अपने विशुद्ध शरीर में वह इष्ट-देवता की प्रतिष्ठा कर नाना प्रकार के न्यासों से अपने सारे शरीर को देव-भाव से अभिभूत कर इष्ट-देवता का अन्तर्यजन करता है।

इसके बाद देवता को बाहर लाकर उसका पूजन करने के लिए 'द्रव्यों का मन्त्रों द्वारा शोधन' कर तथा पूजन के पात्र स्थापित कर एक बार फिर वह अपने 'शरीर के तत्त्वों का शोधन' करता है। तदनन्तर वह एक विशेष क्रिया के द्वारा अपने सम्मुख स्थापित यन्त्र-

राज में 'देवता' का आवाहन कर उसका मन्त्रों द्वारा संस्कार कर उसका 'विशोधन' करता है।

तदनन्तर षोडशोपचारों से देवता का पूजन कर तथा उसकी अनुमति से उसके अंगों का भी यथा-विधि पूजन-तर्पण कर चुकने पर वह वेदी बनाकर देवता का अग्नि के रूप में पूजन कर और उसे पशु-बलि की भेंट कर उसे पूर्ण रूप से सन्तुष्ट करता है। इसके बाद बलि-देवताओं को पञ्च-बलि देकर देवता की आरती कर पुष्पाञ्जलि-दान करता है। अब वह इष्ट-मन्त्र का शोधन कर उसका जप कर कवच-स्तोत्रादि का पाठ करता है।

तदनन्तर आत्म - समर्पण कर देवता का विसर्जन कर उसे पुनः अपने हृदय में प्रतिष्ठित कर लेता है। इस प्रकार देव-भाव में भर कर वह एक अद्‌भुत प्रकार के आनन्द की उपलब्धि करता है।

इन पाँचों शुद्धियों की प्रणाली से जो साधक अपने इष्ट की साधना करेगा, उसे अवश्य ही अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त होगी, इसमें सन्देह नहीं। यह साधना-प्रणाली एक वैज्ञानिक प्रणाली है और योगी लोग तो इसे 'लय-योग' कहते हैं। पहले 'पूजा-स्थान' का शोधन करके अपनी 'आत्मा का शोधन' करना। फिर अपने इष्ट-मन्त्र का 'शोधन' करना। तब 'पूजा-द्रव्यों का शोधन' करे। तदनन्तर इष्ट-देवता का संस्कार कर उसे चैतन्य करना। इस प्रकार अपने को एवं अपने आस-पास के वातावरण को विशुद्ध बनाकर इष्ट-देवता की पूजा में निरत होना—इस सारी क्रिया के करने के लिए कितनी तन्मयता की आवश्यकता है? यह 'लय-योग' न होगा, तो और फिर क्या होगा!

इसमें सन्देह नहीं कि निःस्पृह भाव से इस घोर कलि-काल में उपर्युक्त प्रकार से वर्णित विशुद्ध सनातन शाक्त-धर्म का प्रचार—जगज्जननी की अपनी विभूतियों द्वारा ही सम्भव है।

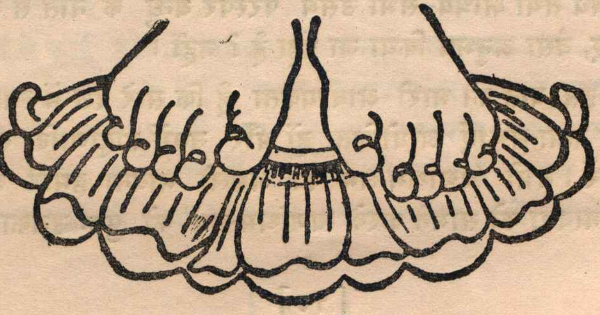

शाक्त-धर्म

और

वर्णाश्रम-धर्म

इस बात में तो कोई सन्देह है ही नहीं कि सनातन 'वर्णाश्रम-धर्म' पूर्ण वैज्ञानिक है और शाक्त-वैष्णव-धर्मादि इसके अन्तर्गत ही हैं। हमें अपने सारे कार्य-कलाप वर्णाश्रम-नियमों का पालन करते हुए ही करने हैं। यहाँ तक तो बात ठीक है, परन्तु जब प्रचलित 'वर्णाश्रम-धर्म' की ओर दृष्टि जाती है, तो हृदय क्षुब्ध हो उठता है।

आज काल-चक्र की अनिवार्य परिवर्तन-शीलता के प्रभाव से ब्राह्मणादि चतुर्वर्णों में जैसी अव्यवस्था फैली हुई है, वह किसी से छिपी नहीं है। स्पर्श्यास्पर्श्य और ऊँच-नीच की भावना ने जो रूप आज ग्रहण किया है और जिसके फल-स्वरूप किसी समय समाज के मजबूत चार आधार-स्तम्भों के समान स्थिति रखनेवाले प्रसिद्ध चारों वर्ण परस्पर द्वेष-विद्वेष की भावना में पूर्ण-रूप से गोते खा रहे हैं, वह क्या हमारे उक्त 'वर्णाश्रम-धर्म' की विशिष्टता है ? कदापि नहीं। उस 'वर्णाश्रम-धर्म' ने, जिसने सेवा-धर्म को सबसे उत्कृष्ट माना है, क्या सेवा-वृत्ति-प्रधान शूद्र-वर्ग को घृणित कभी ठहराया है ? मेरा विश्वास है, कभी नहीं। आज जो ऊँच-नीच की क्षुद्र भावना इतना अधिक उथल-पुथल मचाए हुए है, उसकी ओर 'वर्णाश्रम-धर्म' की कभी भी प्रवृत्ति नहीं थी। उसका तो लक्ष्य ही था—'वसुधैव कुटुम्बकम्।'

वास्तव में ये सब बाद के परिवर्तन हैं। एक नहीं, न मालूम कितने विचार हम लोग आज भी 'वर्णाश्रम-धर्म' के नाम से अपनाए हुए हैं और उनके अस्तित्व के लिए परस्पर लड़ते-भिड़ते रहते हैं। शाक्त-वैष्णवादि धर्मों के जो आदि-महात्मा हो गए हैं, यदि उनके आदर्शों का सूक्ष्म रूप से निरीक्षण किया जाय, तो यही देखने को मिलेगा कि उनका उद्देश्य इसी भ्रान्ति को दूर करना था, जिसके चक्कर में पड़कर चारों वर्ण पारस्परिक स्नेह-सम्बन्ध को भूलकर छूत-छात और ऊँच-नीच की पतित भावना से अपने हाथों ही अपने प्रिय 'वर्णाश्रम-धर्म' को हानि पहुँचा रहे थे।

उदाहरण-स्वरूप शाक्तों के 'भैरवी-चक्र' और वैष्णवों की 'सत्यनारायण-कथा' का एक यह भी लक्ष्य है कि उस प्रसङ्ग में ब्राह्मणादि चारों वर्ण पारस्परिक समान-भाव को अनुभव करने में सर्वदा सक्षम रहें। सामाजिक व्यवस्था में ब्राह्मणादि अवश्य अपने-अपने स्थान पर हैं, किन्तु साधना-मार्ग में सब एक हैं। ब्राह्मण और शूद्र, वैश्य तथा क्षत्रिय—सभी उसमें परस्पर बन्धु के नाते से बँधे हैं, परन्तु क्या आज इस नाते का जैसा चाहिए, वैसा अनुभव किया जा रहा है ? नहीं।

इसलिए आज इस बात की भारी आवश्यकता है कि सारे देश में स्थान-स्थान पर अधिकारानुसार 'भैरवी-चक्र' तथा कथा-सभाएँ आयोजित हों और उनमें ब्राह्मणादि सभी वर्ण समान भाव से साथ-साथ भाग ग्रहण करें। तभी 'वर्णाश्रम-धर्म' की असली भावना हमारे सम्मुख आ सकेगी और 'शाक्त-धर्म' इसी असली भावना को सामने करके 'वर्णाश्रम-धर्म' को पुनः उसका पूर्व-गौरव प्रदान करने में समर्थ हो सकता है।

•

शाक्त का दृष्टि-कोण

भारतवर्ष सदैव धर्म-प्रधान देश रहा है। यहाँ के निवासियों का जीवन-ध्येय धर्म-मय जीवन ही रहा है। सांसारिक होते हुए भी उनका लक्ष्य बराबर अध्यात्म ही रहा है। यही कारण है कि आज के अधार्मिक काल में भी भारतवर्ष में धर्म की भावना पहले की ही भाँति प्रबल बनी हुई है। कहीं वैष्णव-सम्प्रदाय का प्राबल्य है, तो कहीं शैव-सम्प्रदाय का। जहाँ ये दोनों नहीं हैं, वहाँ सन्त-मत का झण्डा फहरा रहा है, परन्तु यह सब वैदिक धर्म का ही, वह चाहे जिस रूप का हो, सर्वत्र बोल-बाला ही दिखा रहा है।

कुछ लोगों का कहना यह है कि यह सब तो जरूर है, परन्तु वैदिक धर्म का लोप हो गया है। हिन्दू-जनता के कुछ अंश में सन्ध्या, गायत्री, उपनयन, विवाह, अन्त्येष्टि तथा श्राद्ध आदि में ही वैदिक धर्म का कुछ अस्तित्व पाया जाता है। अब रहा उसके द्वारा निःश्रेयस की प्राप्ति, सो उस प्रकार की कोई वैदिक साधना करते हुए लोग नहीं पाए जाते। जो लोग ऐसा विचार रखते हैं, उनका वैसा विचार वास्तव में उनकी संकुचित दृष्टि का द्योतक है।

वास्तव में वैदिक धर्म आज भी पहले की ही भाँति विद्यमान है। हम तो यह कहने का साहस करेंगे कि वह पहले से भी अधिक व्यापक रूप में विद्यमान है। ये बहु-शाखा-युक्त वैष्णव सम्प्रदाय, शैव सम्प्रदाय व सन्त-मत आदि सभी उसी के बाल-बच्चे ही हैं। इसके सिवा वह स्वयं भी अपने मूल रूप में विद्यमान है और अपने इन बाल-बच्चों का भरण-पोषण करता चलता है।

उपर्युक्त विचार रखनेवाले सज्जन यह बात कैसे भूल जाते हैं कि सत्य-युग में वैदिक धर्म 'यज्ञ'-प्रधान रहा, त्रेता में वह 'तप' - प्रधान हो गया, द्वापर में वह 'दान'-प्रधान हुआ और कलि-युग में वही 'नाम-जप' - प्रधान हो गया है। उसी 'नाम-जप'—धर्म को निगमागमों ने बीजों को प्रधानता देकर जो वैज्ञानिक रूप दिया है, उससे वैदिक धर्म का महत्त्व इतना अधिक बढ़ा है कि आज वह सबके लिए सुलभ हो गया है। और यह एक सीधी-सादी बात है कि साधारण-से-साधारण आदमी भी, चाहे तो इसे सरलता से हृदयङ्गम कर सकता है, परन्तु आज की दुनियाँ अविद्या-ग्रस्त है। अतएव लोग इच्छा रखते हुए भी इस सरल बात के समझने के लिए ध्यान तक नहीं देना चाहते। उल्टा उसकी निन्दा करने को विशेष रूप से तैयार रहते हैं। ऐसे लोग कहते सुने जाते हैं कि निगमागम तो वाम-मार्गियों के धर्म-ग्रन्थ हैं और वाम-मार्ग अवैदिक है।

इन महानुभावों से कोई पूछे कि आखिर ये तुम्हारे सम्प्रदाय तथा मत कहाँ से आ गए, तो बगलें झाँकने लगते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि उनके सम्प्रदाय या मत की उपासना या ध्यान-धारणा-विधि उनके आचार्यों ने सबकी सब ही नहीं, ज्यों-की-त्यों एक-मात्र आगम-ग्रन्थों से ही ली है। ऐसी दशा में वे क्या उत्तर दें! परन्तु शाक्त-धर्म के आगम-वादी होने के कारण वे अपने को आगम-वादी कहने से झिझकते हैं। वे शाक्तों को फूटी आँख भी देखना पसन्द नहीं करते। आखिर, शाक्तों का अपराध क्या है?

यही कि शाक्तों ने उनकी तरह देश-काल के दबाव में पड़कर अपने धर्म के सिद्धान्तों में फेर-फार नहीं किया। वे अपने सिद्धान्तों पर अटल और अचल रहे। उन्होंने प्राचीन वैदिक संस्कृति को अपनाए रखना श्रेयस्कर समझा। वे इस बात को नहीं भूले कि उनके निगमागम भी ईश-वाणी हैं। वे यह भी जानते रहे कि उनका धर्म धर्म है। वह किसी आचार्य के द्वारा चलाया न तो कोई सम्प्रदाय है और न किसी सन्त के द्वारा चलाया हुआ कोई मत-मतान्तर ही है, अपितु वह प्राचीन वैदिक धर्म है, जो युगानुसार 'नाम-जप' की प्रधानता के रूप में इस प्रकार विकसित हुआ है।

यही कारण है कि आगम-वादी शाक्त लोग न तो किसी सम्प्रदाय की निन्दा करते हुए पाए जाते हैं और न किसी मत-मतान्तर की ही क्योंकि वे उन्हें अपने अर्थात् वैदिक धर्म के कच्चे-बच्चे समझते हैं। और यही क्यों, वे इनके अतिरिक्त अन्य मत-मतान्तरों की भी निन्दा करना ठीक नहीं मानते। उनका दृष्टिकोण ही ऐसा है। और इसी कारण उन्होंने अपना कोई अलग सङ्गठन भी नहीं किया है। वे सारी हिन्दू-जाति को आगम-धर्मानुयायी देखते और मानते हैं, जो वास्तव में है। और यही शाक्तों की महत्ता का द्योतक है।

शाक्त-धर्म की सर्वाधिक विलक्षण विशेषता—दुराग्रह का सर्वथा अभाव

शाक्त-धर्म की अपनी अनेक विशेषताएँ हैं और वे सभी अपने-अपने क्षेत्र में अपूर्व हैं, तथापि उनमें से उसकी एक विशेषता सबसे अधिक विलक्षण है। वह है किसी के भी मार्ग में बाधक न होना, साथ ही अपने अस्तित्व को भी बराबर बनाये रखना। उसकी इस विलक्षणता का मूल कारण यही है कि उसमें दुराग्रह का कभी कोई स्थान ही नहीं रहा है। इसी से आज भी शाक्त-धर्म का अस्तित्व बराबर बना हुआ है। यही नहीं, वह बराबर फल-फूल भी रहा है। यद्यपि उसका उन्मूलन कर देने का प्रयत्न सदैव होता रहा, परन्तु उसका कभी बाल बाँका नहीं हो सका। उसके किसी के मार्ग में बाधक न होने के सद्-गुण ने सदा उसकी ढाल का ही काम किया और वह अपनी इसी ढाल से विरोधियों के प्रहारों को सदैव निष्फल करता रहा है।

हम देखते हैं कि उसकी यह विशेषता अन्य विशेषताओं के साथ उसमें आज भी विद्यमान है और जब तक उसमें यह एक बात बनी रहेगी, तब तक वह पहले ही की तरह अजर-अमर बना रहेगा। यह सच है कि उसका अपना सङ्गठन छिन्न-भिन्न हो गया है। सदियों के संघर्ष ने उसे अपनी प्रबल गौरव-पूर्ण स्थिति में अवश्य नहीं रहने दिया है, तथापि वह है, और पूर्ण सजीव है, और सारे देश में व्यापक रूप में विद्यमान है।

इसका मूल कारण यही है कि उसकी अपनी सभी विशेषताएँ उसमें मौजूद हैं, जिससे वह अपनी पूर्णरूप से रक्षा कर सका। यह उसकी शाश्वतता का ज्वलन्त प्रमाण है। अतएव निराशा का कोई स्थान नहीं है। उसका भविष्य आशा-पूर्ण और उज्ज्वल है। आवश्यकता इस बात की है कि उसके अनुयायी उसकी प्रमुख विशेषताओं को जैसी-की-तैसी बनाए रक्खें। और न सही, उसकी कम-से-कम उपर्युक्त विशेषता अर्थात् अबाधकता को यदि अक्षुण्ण बनाए रखेंगे, तो वे किसी भी संघर्ष के बीच से पहले ही की तरह उसे साफ निकाल ले जायँगे।

शाक्त-मत की प्राचीनता

(सर जान वुडरफ के एक लेख के आधार पर)

मेरी समझ में 'शाक्त-मत' या 'शक्ति'-पूजा अपने कुछ प्रधान स्वरूपों में संसार के प्राचीन-तम तथा अत्यधिक प्रचलित धर्मों में से एक है। यद्यपि यह बात बहुत ठीक है कि 'शाक्त'-धर्म एक प्राचीन धर्म है, तो भी उसके वर्तमान स्वरूप में बहुत कुछ नूतनता आ गई है। समयानुसार उसका विकास हुआ और उसमें आधुनिक दार्शनिक तथा वैज्ञानिक सिद्धान्तों का समावेश हो गया।

इस स्थान में इस बात का उल्लेख किया जा सकता है कि पाश्चात्य देशों में, विशेषतया अमरीका और इंग्लैंड, में एक नवीन प्रकार के साहित्य की रचना हो रही है। इस साहित्य का प्रधान उद्देश्य अलौकिक शक्तियों का ज्ञान प्राप्त करना है। इसके सिद्धान्त 'शाक्त-साधना' से बहुत कुछ मेल खाते हैं। उस साहित्य में ऐसी भी पुस्तकें हैं, जिनमें 'वशीकरण'-जैसे प्रयोगों की सिद्धि के उपाय बताए गए हैं। यद्यपि इनमें बहुत-कुछ धूर्तता का भी समावेश है, तो भी ये लगभग उसी ढँग की पुस्तकें हैं, जैसे तान्त्रिक 'शाबर' मन्त्र।

अनेक वर्ष हुए 'एडवर्ड सेलन' ने मदरास प्रान्त की सिविल सर्विस के प्राच्य-विद् विद्वानों की सहायता से 'तान्त्रिक साहित्य' के अनुसन्धान का प्रयत्न किया था। कुछ कारणों से उन्होंने तन्त्रों का सुदृष्टि से विचार नहीं किया, परन्तु उन्होंने शाक्तों की तुलना यूनानी 'टेलिस्टिका' या 'डीनामीका' से, 'शक्ति-पूजा' की 'डैनीसियस' की गुह्य बातों से और 'शक्ति-शोधन' की उस संस्कार से की, जो 'हनकर बीली' के 'एण्टीक ग्रीक वेसेज्' नामक ग्रन्थ में वर्णित है। तदुपरान्त यहूदी तथा दूसरे प्राचीन ग्रन्थकारों की पुस्तकों के अनेक स्थानों में 'शाक्त-धर्म' की क्रियाओं के उल्लेख की सूचना देकर उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि–'इस समय भी संसार का 'मन्त्र-विद्या' का एक बहुत प्राचीन-तर भाग 'शाक्त-धर्म' के रूप में भारत में विद्यमान है।'

किसी खास परिणाम को चाहें जो महत्त्व दिया जाय, 'एडवड सेलन' का निर्णय साधारण-तया बहुत ठीक है, क्योंकि जब हम इस उपासना के भूत-कालीन इतिहास पर दृष्टि डालते हैं, तब हम यह देखते हैं कि यह एक अत्यन्त प्राचीन उपासना है। सभी देशों में सर्व-शक्ति-शालिनी 'शक्ति' की पूजा भिन्न-भिन्न नामों से स्त्री के रूप में होती थी। यूनान में–

'सिवेली' 'अफ्रोडाइट' के नाम से, बैबिलान में–मिलिट्टा के नाम से, मिस्र में–'इश', 'ओसिया' आदि के नामों से, और अफ्रीका में–'सलम्बो' के नाम से उसी मूल प्रकृति की पूजा होती थी। अल्जीरियावाले–'सकथ बे नथ' और रोमन लोग–'जूनो' तथा बौद्ध लोग–'तारा' के नाम से उसकी अर्चना करते थे।

सारांश यह है कि 'आदि-शक्ति' की उपासना अतीत काल से लेकर वर्तमान समय तक भिन्न-भिन्न नामों से सारे भू-मण्डल पर सदा होती रही है।

इतने पर भी ऐसे लोग मिलते ही हैं, जो कहते हैं कि शाक्त-धर्म आधुनिक है। उनके इस कथन को अस्वीकार करते समय हम यह नहीं कहते कि इस धर्म में परिवर्तन नहीं किए गए हैं या इसका विकास नहीं हुआ है। जैसे-जैसे मानव स्वभाव में परिवर्तन होता है, वैसे-ही-वैसे उसके धार्मिक भावों में भी अन्तर होता है।

'शाक्त-मत' का यह आवश्यक सिद्धान्त है कि—'साधक को अपना लक्ष्य प्रकृति के द्वारा ही प्राप्त करना चाहिए।' उसे प्राप्त करने के लिए साधक को–'प्रकृति का त्याग करने का आदेश नहीं है।' उसके कुछ उपयोगों के सम्बन्ध में चाहे जो कुछ कहा गया हो, किन्तु उसमें एक ही सत्य सिद्धान्त अन्तर्निहित है।

'शक्ति-पूजा' के गुप्त रहस्यों के सम्बन्ध में जो प्रमाण मिलते हैं, वे अपरिमित हैं। इस धर्म की साधारण 'बाह्य-पूजा' एवं 'अन्तरङ्ग शिक्षाओं' के रूप बहुत प्राचीन हैं। इस सम्बन्ध में भारत के बाहर 'शाक्त-मत' की शिक्षा तथा क्रिया के अस्तित्व का जो विचित्र उदाहरण मिलता है, वह यहाँ दिया जाता है। अमरीका के इण्डियनों के 'पोपुलबु' नाम के माया-वादात्मक धर्म-ग्रन्थ में 'हुरकन' अर्थात् बिजली का जो उल्लेख है, वह शाक्तों की 'कुण्डलिनी'-शक्ति से मिलता-जुलता है। यही क्यों, सुषुम्ना नाडी तथा ईडा और पिङ्गला एवं अन्यान्य शरीरस्थ चक्रों का भी निर्देश उनके उस धर्म-ग्रन्थ में विद्यमान है।

सम्भवतः जिन मुख्य कारणों से शाक्त-ग्रन्थों का प्रमाण कुछ लोगों को स्वीकृत नहीं, उनमें से एक 'पञ्च-तत्त्व-क्रिया' का उपयोग है, जिसे कुछ शाक्तों ने अङ्गीकार किया है और सम्भवतः इसी कारण यह धर्म आधुनिक समझा जाता है, परन्तु इसके विपरीत मद्य, मांस इत्यादि का प्रचलन स्वयं अत्यन्त प्राचीन है। इन क्रियाओं के सम्बन्ध में कुछ लोग ऐसी बातें करते हैं, मानों इन वस्तुओं का प्रचलन यहाँ बिलकुल ही नया हो! यही नहीं, इन्हें एक-मात्र शाक्तों की गढ़न्त और प्राचीन समय के उद्देश्यों तथा व्यवहारों के सर्वथा विपरीत बतलाते हैं!

यदि इस विषय का अनुसन्धान किया जाय, तो यही सिद्ध होगा कि जो उपासक इस प्रकार की क्रियाएँ करते हैं, वे बहुत ही प्राचीन काल की प्रथाओं का ही अवलम्बन किए हैं और ये प्रथाएँ अत्यन्त प्राचीन-काल में वैदिकाचार के समान ही प्रचलित रही हैं, जो जैन तथा बौद्ध-धर्म के प्रबल होने पर सम्भवतः बाद को त्याग दी गईं। मैं उन प्रथाओं को 'समान' इसलिए कहता हूँ कि वे वैदिकाचार के अन्तर्भूत नहीं थीं। इन दोनों में भिन्नता रही है। इस तरह इस 'पञ्च-तत्त्व-उपासना' में वैदिक ढङ्ग से मद्य, मांस आदि के उपयोग में साम्य है ही। अस्तु।

वैदिक कर्मं-काण्ड में 'मद्य' के स्थान में 'सोम' का उपयोग होता था। 'मांसाष्टक-श्राद्ध' में 'मांस' का, 'अष्टक - श्राद्ध' तथा 'प्रेत - श्राद्ध' में 'मछली' और 'वाम-देव्य-व्रत' एवं 'महा-व्रत' में 'मैथुन' का प्रचलन था। वैदिक कर्म-काण्ड के ये विधान सर्व-स्वीकृत वैदिक ग्रन्थों के प्रमाणों से भी समर्थित हैं। अथर्व-वेद के 'सौभाग्य-काण्ड' में ही इनका उल्लेख नहीं है, जिससे, लोग कहते हैं, 'कालिकोपनिषद्' तथा दूसरे शाक्त एवं तान्त्रिक उपनिषद् निकले हैं। प्रसिद्ध विद्वान् पं० रामेन्द्रसुन्दर त्रिवेदी ने अपने 'विचित्र प्रसङ्ग' में बतलाया है कि पञ्च-तत्त्वों की 'मुद्रा' (अन्न की बनी वस्तु), 'सोम-याग' तथा दूसरे यागों के 'पुरोडाश' से मेल खाती है।

'मद्य' तथा किसी-किसी स्थिति में 'मांस' के वर्जन का वर्तमान नियम बौद्ध-धर्म के कारण हुआ है। यह सच है कि 'उषनः संहिता' में लिखा है कि—'मद्य न तो पीना चाहिए और न देना या ग्रहण करना चाहिए (मद्यमपेयम् अदेयम् अग्राह्यम्)', तो मनु महाराज लिखते हैं—'न मांस-भक्षणे दोषो न मद्ये…।' यद्यपि उन्होंने अपने इस आदेश में यह जोड़ दिया है, जैसा कि अनेक लोग करते हैं—'निवृत्तिस्तु महा-फला।' 'तान्त्रिक विधान' भी इस बात की आज्ञा नहीं देता कि वृथा पान या मांस-भक्षण किया जाय।

दो भिन्न बातें एक में मिला देना एक साधारण भ्रम है। उदाहरण के लिए, मत, प्रथा और शास्त्रीय विधान आधुनिक हो सकते हैं, पर जिन बातों की वे चर्चा करते हैं, वे सम्भव है, अत्यन्त प्राचीन हों। जब मैं 'शाक्त-धर्म' की अत्यन्त प्राचीनता की बात कहता हूँ, तब मेरा केवल यह मतलब नहीं है कि वे ग्रन्थ भी उतने ही प्राचीन हैं, जो तन्त्र कहलाते हैं। 'तन्त्र'-ग्रन्थ साधारण-तया सरल संस्कृत में लिखे गए हैं और इस उद्देश्य से लिखे गए हैं कि सर्व-साधारण को उनका आशय समझने में सुगमता हो। इन ग्रन्थों के लिखने में लेखन-चातुर्य नहीं प्रकट किया गया है। इनकी यही सरलता इनकी प्राची-

(शेष पृष्ठ २० के नीचे)

शाक्त-धर्म का सन्देश

१—भ्रातृत्व-भावना हेतु व्यावहारिक योजना

शाक्त-धर्म के अनुसार सभी मनुष्य परस्पर बन्धुत्व-भावना के दृढ़ सूत्र में बँधे हुए हैं। उस जगज्जननी परा शक्ति की ही सब सन्तान हैं। अतएव सब भाई-भाई हैं। इसमें सन्देह नहीं कि वैष्णवादि अन्य धर्म भी मनुष्यों में भ्रातृत्व-भाव का ही विशेषतया प्रतिपादन करते हैं, परन्तु वे व्यावहारिक रूप में इस दिशा में कोई ठोस कार्य-प्रणाली प्रस्तुत नहीं करते हैं। वे जनता में भाई-चारा स्थापित करने का प्रयत्न करते हैं, परन्तु अप्रत्यक्ष रूप से ! फल यह हुआ है कि उन्हें अपने कार्य में सफलता नहीं ही प्राप्त हुई और हिन्दू-समाज की वर्ण-व्यवस्था, जो किसी दिन हिन्दुओं को उन्नत-से-उन्नत अवस्था में पहुँचाने-वाली सिद्ध हुई थी, आज हिन्दू-जाति के पराभव का मूल कारण बताई जाती है।

इस सम्बन्ध में यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि अन्य धर्मों के समान शाक्त-धर्म भ्रातृत्व-भावना का प्रतिपादन करके ही नहीं रह गया, अपितु उसने एक व्यावहारिक योजना शाक्तों के सामने रखी, जिससे शाक्त लोग एक दूसरे को बन्धु के रूप में देख सकें। आज भी वैष्णव द्विज और वैष्णव शूद्र में, समान धर्मानुयायी होते हुए भी, भेद-भाव और ऊँच-नीच का भाव विद्यमान है, जब कि शाक्त-बन्धुओं में ऐसी कोई बात नहीं है।

आगम में कहा गया है कि 'चक्रार्चन' में सहयोग करनेवाले सभी वर्ण समान हैं। यहाँ तक कि चाण्डाल भी ब्राह्मण के समक्ष उसके समान या कभी-कभी उससे बढ़कर माना गया है। और आगम का यह सन्देश शाक्त-समाज में केवल 'पोथी की बात' नहीं है, अपितु उसे कर्म का रूप दिया गया है। शाक्तों की मूल धारणा यह होती है कि प्रत्येक व्यक्ति शिव-रूप है। और तब परहेज कैसा ? श्री जगन्नाथ जी में प्रसाद ग्रहण करने की जो निश्चित प्रणाली है कि बिना वर्ण-भावना के भोजन किया जाय, उसमें शाक्त-धर्म का यही भाव विद्यमान है।

(पृष्ठ १६ का शेषांश)

नता का भी द्योतक है। इसके साथ ही इन ग्रन्थों की संस्कृत लौकिक है, आर्ष नहीं। इसके सिवा इनमें ऐसे विवरण भी हैं, जिनसे इनका समय निर्दिष्ट हो जाता है।

मैं यह बात इन ग्रन्थों के सम्बन्ध में नहीं कहता, किन्तु मेरा मतलब उन वचनों या अंशों से है, जिनका इनमें उल्लेख है। जिस शाक्त-धर्म की इनमें चर्चा है, उस धर्म के प्राथमिक स्वरूप का अस्तित्व—इनके लेखकों द्वारा लेख-बद्ध किए जाने के बहुत पहले ही रहा होगा। लेखकों को वे परम्परा से उसी तरह उपलब्ध हुए होंगे और उनको पुस्तक का रूप मिला होगा, जैसे कि वैदिक गोत्रों ने किया है। अन्यान्य बातों के सदृश इस प्रकार के विचार तथा प्रथाएँ समय की गति के अनुसार विकसित होती रही हैं। यह भी एक प्रकार का सिद्धान्त ही है। ऐसा सदा से ही होता आया है।

इस विवरण से स्पष्ट है कि शाक्त-धर्म की बन्धुत्व-भावना का आदर्श कितना ऊँचा है। और यह भी निश्चित है कि ऐसे आदर्श के अनुकरण से हिन्दू-समाज की वर्ण-व्यवस्था कैसी सुख-दायिनी रह सकती है। हम तो यहाँ तक कहने को तैयार हैं कि शाक्त-धर्म ही वस्तुतः एक ऐसा धर्म है, जिसके प्रचार से सम्प्रदाय अथवा वर्ण-गत भेद-भाव का मूलतः उच्छेदन हो सकता है। यह कहते हुए हमारा यह कर्तव्य है कि यह भी स्पष्ट कर दिया जाय कि इस उक्ति से हमारा तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि कोई धर्म हेय है।

'धर्म' तो अपने नाम ही से सिद्ध करता है कि वह मानवों के लिए मङ्गल का साधन है। सभी धर्मों के उच्च सिद्धान्त मूलतः एक से ही हैं। मनुष्य के विचार सदा एक से नहीं रहते। समय परिवर्तन-शील है, एक युग जाता है और दूसरा युग आता है। इस वर्तमान कलि-युग में केवल शाक्त-धर्म ही मानवों का निस्तार कर सकता है और अपने धर्म के इस महत्त्व को संसार - विदित करने के लिए शाक्त-समाज को संगठित होना ही होगा। उसे बता देना होगा कि शाक्त-धर्म क्या है, शाक्त क्या कर सकता है और शाक्त के आदर्श कितने पवित्र और ऊँचे हैं। शाक्तों को बन्धुत्व-भावना सङ्गठित करनी होगी—सहोदर के लिए जैसे मनुष्य प्राण तक दे देने को उद्यत होता है, वैसे ही पारस्परिक हित के लिए आत्म-बलिदान करने के लिए सदा प्रस्तुत रहना होगा।

२—नारी को पूज्य समझने की व्यावहारिक भावना

बन्धुत्व-भावना को विकसित करने के साथ-साथ शाक्त-धर्म सन्देश देता है कि संसार की शक्ति—'नारी' को पूज्य-तम दृष्टि से देखो। उस 'परा शक्ति' की झलक यदि देखी जा सकती है, तो केवल नारी में। 'शक्ति' के बिना शिव 'शव'-रूप है, इसकी सच्चाई सांसारिक नर-नारी के सम्बन्ध पर विचार करने से स्पष्ट हो जाती है। वही भावना इनके साकार रूप में दिखाई देती है।

नारी का माता-रूप न हो, तो नर का नाम ही न रहे, पत्नी-रूप न हो, तो नर को संसार में आकर्षण ही न रहे और यदि नारी न हो, तो दया, करुणा, सहानुभूति आदि मानवोचित गुणों का जन्म ही न हो। कौन कह सकता है कि 'नारी-शक्ति' में उस 'परमा शक्ति' का आभास नहीं है!

अतएव शाक्त-धर्म का सन्देश है कि प्रत्येक 'नारी' को पूज्य दृष्टि से देखो। यहाँ भी कहना पड़ता है कि अन्य धर्मों में नारी को पूज्य मानते हुए भी व्यावहारिक रूप से, उसे 'पूज्य' का स्थान नहीं दिया गया है। दूसरी ओर शाक्त-धर्म प्रत्यक्षतः व्यावहारिक रूप से उसका पूजन कर जगदम्बिका के अंश-भूत रूप में उसका सम्मान करता है। शाक्त-धर्म की यही सबसे बड़ी विशेषता है कि उसके सिद्धान्तों का अपना व्यावहारिक मूल्य होता है, केवल थोथा दार्शनिक-वाद ही उसमें नहीं है।

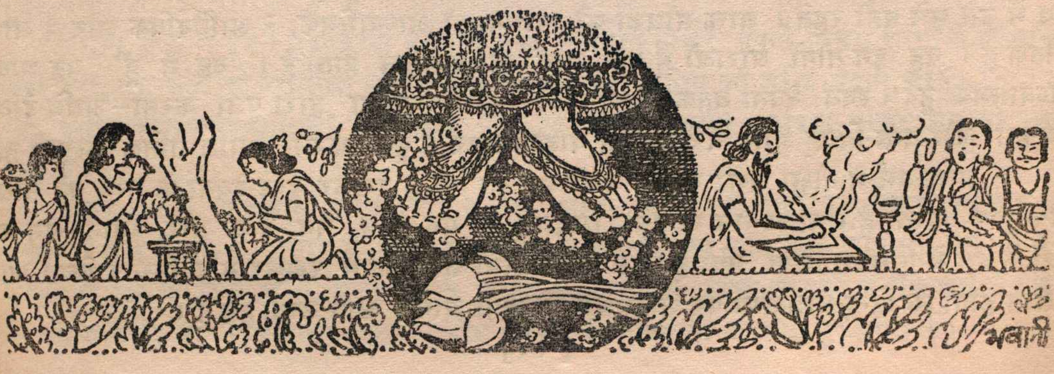

शाक्त की उपासना

शाक्त की उपासना 'वीर' की उपासना है और वह कायर के लिए नहीं है। खूँटे से पशु बँधा रह कर उसके आस-पास चक्कर लगाता रहता है, परन्तु जो साधक उस खूँटे को उखाड़ कर अपनी राह लगता है, वही 'वीर' कहलाता है। यही शाक्त का आदर्श है। उसके लिए विधि-निषेध की बातें नहीं हैं। सदा-शिव ने उसके लिए जो उन्मुक्त मार्ग निर्दिष्ट कर दिया है, वही उसको श्रेय है। और वह मार्ग और कुछ नहीं है, केवल मां को रिझाए रहना है। रोकर, गाकर, जैसे भी हो, उसकी प्यारी गोद प्राप्त हो, इसी का प्रयत्न। और कुछ नहीं। इसके लिए न व्रत की जरूरत है, न उपवास की, न योग की, न यज्ञ की। बस, उसके चरणों के चिन्तन मात्र की आवश्यकता है। गुरूपदिष्ट मार्ग पर अविचल भाव से चलते रहने से वह चिन्तन भी अपने आप ही सुलभ हो जाता है।

आश्चर्य है, ऐसे स्वाभाविक मार्ग से कितने ही सुपुत्र चौंकते और झिझकते हैं। कहते हैं, हम पिता-भक्त हैं। सयाने हो जाने से क्या कोई माँ का बाप हो जाता है? वह तो सभी अवस्थाओं में और अन्यों की भी दृष्टि में उसका बच्चा ही रहेगा। तब यह सङ्कोच झूठा अभिमान नहीं, तो फिर क्या है? पुरुषत्व का यह अर्थ नहीं है कि वह माँ को भूल जाय। इस रहस्य को शाक्त-साधक ही भले प्रकार समझता है और इसी ज्ञान के बल पर वह आज विपरीत काल में भी माँ की सेवा से विमुख नहीं है। वह अपने आदर्श को दृढ़ता से ग्रहण किए हुए है और यह उसके लिए वास्तव में गौरव की बात है।

शाक्त-धर्म का वैज्ञानिक साधना-क्रम

भिन्न-भिन्न इष्ट-देवताओं की उपासना का विधान होते हुए भी शाक्त-धर्म में 'परमेश्वर' का अपना स्वतन्त्र स्थान है। प्रत्येक शाक्त साधक को अपने इष्ट-देवता की आराधना के साथ-साथ परमेश्वर की भी पूजा करनी पड़ती है। अन्य धर्मों के मुकाबले शाक्त-धर्म की यह सबसे बड़ी विशेषता है। शाक्त-साधक ही परमेश्वर की पूजा करते हैं और वे उसके एक ऐसे रूप की कल्पना करके उसकी पूजा करते हैं, जो ध्यान-गम्य है। शाक्त-धर्म का यह परमात्म-तत्त्व उसका प्रधान तत्त्व है।

वैष्णव, शैव आदि किसकी पूजा करते हैं? विष्णु, शिव आदि की ही न! और ये परमेश्वर नहीं हैं, किन्तु उसके अंश-विशेष हैं। शाक्त-साधक भी काली, तारा आदि अपनी इष्ट-देवी की पूजा करते हैं, पर वे परमेश्वर को परमेश्वर और काली को काली मानते हैं। अन्य धर्मों में परमेश्वर की या तो उपेक्षा की गई है, या इष्ट-देवता ही परमेश्वर मान लिया जाता है।

परमात्मा की प्रत्यक्ष पूजा केवल शाक्त-साधक ही करता है। वे अपने इष्ट-देवता के भक्ति-भाव में उसे भूले नहीं रहते। शाक्त-साधकों की साधना—१ आध्यात्मिक, २ आधिदैविक और ३ आधि-भौतिक है। वह इन तीनों धाराओं में एक साथ ही प्रवाहित होती है। 'वह मैं हूँ'—यह भावना 'आध्यात्मिक' हुई। स्वयं देवता बनकर देवता की अपने में भावना द्वारा पूजा करना—'आधि-दैविक' भाव हुआ और यन्त्र-विग्रह आदि में देवता का षोडशोपचार से पूजन करना—'आधिभौतिक' कल्पना हुई।

शाक्त-धर्म में दीक्षा लेकर साधक अपने मन को विशुद्ध रखकर इष्ट-देवता के मन्त्र की साधना ध्यान-पूर्वक करता है। शाक्त-धर्म में इसी सिद्धान्त का गुरु, मन्त्र, मन, इष्ट और ध्यान—इन पाँच तत्त्वों के रूप में निरूपण किया गया है। इन पाँच तत्त्वों को दृष्टि में रखकर यदि विचार किया जाय, तो ज्ञात होगा कि हिन्दू-सम्प्रदायों पर शाक्त-धर्म की कैसी अमिट छाप लगी हुई है।

उक्त पाँचों तत्वों का वैज्ञानिक निरूपण सबसे पहले शाक्त-धर्म-ग्रन्थों में ही हुआ है। 'बौद्ध-धर्म' से लेकर आधुनिक 'राधा-स्वामी'-मत तक पर शाक्त-धर्म का केवल प्रभाव ही नहीं दिखाई देता है किन्तु प्रायः सभी प्राचीन तथा नवीन धर्म-ग्रन्थों में उसका किसी-न-किसी रूप में अवश्य उल्लेख हुआ है। शाक्तों के 'भैरवी-चक्र' का अनुकरण बौद्धों ने 'धर्म-चक्र' के रूप में और जैनियों ने 'महा-चक्र' के रूप में किया है।

मद्य-मांसादि की प्रामाणिकता

मद्य, मांस आदि शाक्त-धर्म की साधना के महत्त्व-पूर्ण उपकरण हैं। ये पदार्थ देव तथा पितृ-कार्यों में वैदिक काल से ही हिन्दू-समाज में ग्रहीत रहे हैं। तब यदि वैदिक मार्ग के एक विशेष अङ्ग शाक्त-धर्म में इनको स्थान दिया गया, तो यह सर्वथा स्वाभाविक ही है। मांस, मत्स्य आदि मेध्य हैं। अतएव ये सात्विक पदार्थ हैं। पाशविक विकारों के शान्त्यर्थ शाक्त-साधक इनका उपयोग अपनी साधना में करते हैं।

हिन्दू शाक्त-साधक स्त्री को 'शक्ति'-रूप में मानते हैं। कन्या रहते वे उसकी भिन्न-भिन्न देवियों के रूप में सोलह वर्ष के वय तक पूजा करते हैं। जब उसी कन्या का विवाह हो जाता है, तब पत्नी-शक्ति के रूप में पूजा करते हैं। स्त्रियों को शाक्त-धर्म ने जो सम्मान-पूर्ण स्थान प्रदान किया है, वह संसार का कोई धर्म उन्हें आज तक नहीं दे सका और हिन्दू-शाक्तों का 'भैरवी-चक्र' तो वह चक्र हैं, जिसमें मनुष्य मनुष्यता के पूर्ण रूप का दर्शन करता है।

जिस 'तन्त्र-शास्त्र' में शाक्त-धर्म का प्रतिपादन किया गया है, वह ऐसा-वैसा नहीं है कि उसे चुटकियाँ बजाकर उड़ा दिया जा सके। उसके वक्ता सदा-शिव माने गए हैं और इसी कारण 'वेद' की भाँति वह भी 'श्रुति' की श्रेणी में है। उसके ग्रन्थों की भी बहुत अधिक संख्या है और उन सभी में योग और उपासना का विस्तार के साथ निरूपण किया गया है।

वस्तुतः भारत की परम्परागत अध्यात्म-विद्या का विकसित रूप तन्त्र-ग्रन्थों में ही भले प्रकार बताया गया है। ऐसे ही महान् शास्त्र में शाक्त-धर्म का प्रशंसा के साथ उल्लेख हुआ है। शाक्त-धर्म के प्रधान उपकरण 'मद्य-मांसादि' का विधान मन्त्र-शास्त्र में तो है ही, वेदादि धर्म-ग्रन्थों में भी उनका पर्याप्त उल्लेख है। शुक्ल यजुर्वेद के अध्याय १६ में यह मन्त्र है—

ब्रह्म क्षत्रं पवते तेज इन्द्रिय सुरया सोमः सुत आसुतो मदाय शुक्रेण देव देवताः पिप्रिग्ध रसेनान्नं यजमानाय धेहि।

अर्थात् हे सोम-देव ! सुरा-द्वारा बलवान् तथा तेजवान् होकर अपनी निर्मल शक्ति से देवताओं को प्रसन्न करो, यज्ञ-कर्ता को रसवाला भोजन और ब्राह्मण तथा क्षत्रिय को शक्ति प्रदान करो।

इसी प्रकार ऋग्वेद में भी 'अर्वन्त्यर्कं मदिरस्य पीतये' अर्थात् 'मदिरा पीकर सूर्य को पूजते हुए' कहा है।

शाक्त-धर्म में मद्य-मांस का ग्रहण पान और भोजन के रूप में नहीं है। चरणामृत-पान तो 'विन्दु'-रूप है और देवता के प्रसाद में २-४ बताशे ही मिलते हैं, यह कौन नहीं जानता। धर्म को जब धर्म के रूप में देखा जाता है, तभी वस्तु-स्थिति समझ में आती है। शाक्त-साधकों के चक्रार्चन के दर्शन पाने से मद्य-मांसादि के उपयोग का रहस्य और उनकी प्रामाणिकता का बोध हो जाता है।

शाक्त-धर्म की मूल भावना

शाक्त-धर्म के प्रति अन्य लोगों का विचार यह है कि शाक्त-धर्म केवल सांसारिक अथवा ऐहिक भोगैश्वर्य एवं प्रयोगादिकों के लिए ही है। यदि यह बात सत्य हो, तो यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि उनकी धारणा सर्वथा निर्मूल है। तन्त्रों के अनुशीलन मात्र से विदित होगा कि यह उत्कृष्ट धर्म (सर्व-धर्मोत्तमं धर्म शिवोदितं) मनुष्य को 'मनुष्य' ही नहीं बनाता, वरन् 'देवता'-भाव में पूर्णतया स्थित करता है; मानव सभ्यता के सर्वोच्च शिखर पर उसकी स्थिति वास्तविक रूप से अटल करता है। जो शाक्त प्रातः-स्मरण में ही अपने दैनिक कार्यों का समर्पण निम्न प्रकार से करता है—

'प्रातरुत्थाय सायान्तं प्रातरेव च, यत् करोमि जगद्-योने ! तदस्तु तव पूजनम्'—

वह क्या कभी अनुचित कर्मों का आसरा लेगा ? या द्वेष-मय प्रयोगों का अवलम्बन करेगा ? जो प्रातः-स्मरण में अपने स्वरूप की व्याख्या निम्नांकित श्लोक से कर अपने चित्त को प्रबोध देता है—

नाहं मनुष्यो न च देव-यक्षो, न ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रः।
न ब्रह्मचारी न गृही वनस्थो, भिक्षुर्न चाहं निज बोध-रूपम् ॥

इस प्रकार की आत्म-भावनावाला साधक क्या कभी गर्हित कार्यों को कर सकता है ? प्रातः-स्मरण के अन्त में अधिकारी साधक निम्न श्लोक को पढ़ते हैं—

अहं देवी न चान्योऽस्मि, ब्रह्मैवाहं न शोक - भाक्।
सच्चिदानन्द - स्वरूपोऽस्मि, नित्य - मुक्त - स्वभाव-वान् ॥

उपर्युक्त भावना साधक की सर्व-भूत ब्रह्म के साथ अपनी एकता कराती है। फिर वह किसका बुरा चाहे ! पूर्णाभिषेक-प्राप्त साधक तीनों मुख्य सम्प्रदायों में, अर्थात् कश्मीर, केरल और गौड़ में केवल क्रमशः निम्नाङ्कित सङ्कल्पों के सिवाय और सङ्कल्प करने के अधिकारी तक नहीं हैं—

१– देवता-प्रसन्नार्थे, २—देवता-प्रीत्यर्थे, ३—प्रत्यक्ष-दर्शनार्थे।

ये बातें सभी विज्ञ और अधिकारी साधक जानते हैं। फिर कौन अज्ञानी इस बात के कहने का साहस कर सकता है कि शाक्त-साधना केवल सांसारिक भोग तथा प्रयोग के लिए है। हाँ, 'शापादपि शरादपि'—गीता में स्वयं भगवान् आततायी का वध करने के लिए कहते हैं। इसलिए शाक्त शास्त्रों में प्रयोगों का वर्णन अवश्य है, किन्तु साथ ही यह भी लिखा गया है—

'प्रयोग-कर्तॄणां' पर-लोकं न विद्यते।'

सभी शाक्त शास्त्रों में प्रयोगों के करने की स्पष्ट रूप से निन्दा की गई है। वे केवल अत्याचारी के दमन के लिए तथा परोपकार करने के लिए हैं। शाक्त-धर्म शिशु की तरह पूर्ण रूप से मातृ-अङ्क में निर्भर रहने की शिक्षा देता है। अठारह-भुजा, सहस्र-भुजावाली पराति-परा भट्टारिका साकार-रूपिणी जगदम्बा से रक्षित शाक्त शिशु का अमङ्गल कौन कर सकता है ? वह किसके लिए प्रयोग करे और क्यों काम्य कर्म करे ? हाँ, जिसे अपनी भारी पड़ी है, वह उससे भिड़े और अपना सर्व-नाश करे।

ये त्वां स्मरन्ति देवेशि, रक्षसे तान् न संशयः।

'शक्ति'-उपासना के स्रोत—'उपनिषद्'

'शक्ति'-उपासना का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। उपलब्ध प्रमाणों से यह अनुमान किया जा सकता है कि 'शक्ति-उपासना' उपनिषदों के युग से भी हजार वर्ष पूर्व प्रचलित थी। उस समय का समाज 'महा-माया' पर विश्वास रखता था। वह नदियों, वृक्षों और पर्वतों के रूप में प्रकृति-रूपी शक्ति की पूजा करता था। प्रकृति-मूलक यह पूजन-परम्परा मूढ़ता या अन्ध-विश्वास पर आधारित नहीं थी, अपितु सौन्दर्य-दर्शन की चरम भाव-अनुभूति की प्रतीक थी। यही आगे चलकर 'शक्ति-उपासना' में परिणत हुई।

वेदों, उपनिषदों, पुराणों आदि शास्त्रों ने 'ब्रह्म' की त्रि-गुणात्मिका प्रकृति को ही 'शक्ति' माना है। 'श्वेताश्वतर-उपनिषद्' की उक्ति है कि—"सत्त्व, रज और तम-रूपी त्रि-गुणात्मिका प्रकृति ही 'शक्ति कहलाती है।"

'ऋग्वेद' के रात्रि-सूक्त, देवी-सूक्त, श्री-सूक्त, 'अथर्व-वेद' के देव्यथर्वशीर्ष से 'शक्ति-उपासना का विकसित रूप स्पष्ट रूप से लक्षित होता है।

'दुर्गोपनिषद'—'शक्ति' को दुर्गा देवी और काल-रात्रि के रूप में स्वीकार करता है। इसके बाद 'मार्कण्डेय'-पुराण, 'पद्म' पुराण, 'कूर्म'-पुराण, 'भागवत'-पुराण, 'नारद'-पुराण, 'वृद्ध-हारीत', 'रामायण' और 'महा-भारत' आदि पौराणिक साहित्य में तथा 'योग-वासिष्ठ', 'पातञ्जल-योग-दर्शन', 'पूर्व-मीमांसा', 'उत्तर-मीमांसा', 'न्याय-कुसुमाञ्जलि', 'वाक्य-प्रदीप' आदि दर्शन-ग्रन्थों में एवं 'मालती-माधव', 'कुमार-सम्भव', 'दश-कुमार-चरित', 'नागानन्द', 'कर्पूर-मञ्जरी' और 'कादम्बरी' आदि साहित्यिक ग्रन्थों में 'शक्ति-उपासना' के अनेक विधान और उद्धरण मिलते हैं।

हिन्दू-धर्म-ग्रन्थों और सम्प्रदायों के अतिरिक्त 'जैन' और 'बौद्ध' धर्मों के सम्प्रदायों में भी हमें 'शक्ति-उपासना' के अनेक प्रमाण मिलते हैं।

'जैन'-धर्म के 'ज्ञात-धर्म-कथा-कोष' आदि प्रबन्धात्मक साहित्य में शक्ति-सम्बन्धी विविध सामग्री विद्यमान है। 'बौद्ध'-साहित्य में 'तारा', 'धारिणी' और 'मणि-मेखला' के रूप में 'शक्ति' का प्रचुर उल्लेख मिलता है। बौद्धों की 'महा-यान-शाखा' द्वारा 'शाक्त-मत' का अत्यधिक प्रचार हुआ है। 'वज्र-यान-शाखा' से विविध यन्त्रों और मन्त्रों का विधान प्रकट हुआ है।

पर-वर्ती काल में जिन उपनिषदों का सङ्कलन हुआ है, उनमें हमें अनेक देवियों–शक्तियों का वर्णन मिलता है । इस वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि उस समय के सङ्कलित उपनिषद् शाक्त-सिद्धान्तों से प्रभावित रहे हैं ।

'शक्ति'-उपासना का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है । उपलब्ध प्रमाणों से यह अनुमान किया जा सकता है कि 'शक्ति-उपासना' उपनिषदों के युग से भी पाँच हजार वर्ष पूर्व प्रचलित थी । उस समय का समाज 'महा-माया' पर विश्वास रखता था । वह नदियों, वृक्षों और पर्वतों के रूप में प्रकृति-रूपी शक्ति की पूजा करता था । प्रकृति की यह पूजन-परम्परा मूढ़ता या अन्ध-विश्वास पर आधारित नहीं थी, अपितु सौन्दर्य-दर्शन की चरम भाव-अनुभूति की प्रतीक थी ।

उदाहरणार्थ, 'सुमुखी उपनिषद्' में शव पर आरूढा, सुन्दर वस्त्रालङ्कारों से विभूषिता 'षोडशी' के रूप में 'शक्ति' का ध्यान वर्णित है ।

'बह्वृच उपनिषद्' में—भगवती बगला, चामुण्डा, वाराही, महा-त्रिपुर-सुन्दरी, भुवनेश्वरी, बाला, मातङ्गी, तिरस्करिणी, धूमावती, सरस्वती, सावित्री––इन देवियों का वर्णन किया गया है ।

'सौभाग्य-लक्ष्मी उपनिषद्' में महा-लक्ष्मी का तन्त्रोक्त वर्णन है । इसमें श्री श्रीविद्या-रहस्य भी वर्णित है । 'त्रिपुर-तापिनी उपनिषद्' में दुर्गा देवी का वर्णन करते हुये महा-देवी के विराट् रूप का ध्यान दिया गया है । 'दुर्गोपनिषद्', 'सरस्वती-रहस्योनिषद्' तथा 'देवी उपनिषद्' में शक्ति के अन्य स्वरूपों का वर्णन हुआ है । 'केनोपनिषद्' में शक्ति-उपासना के महत्त्व का प्रतिपादन करने के लिए बहुत ही रोचक कथा है—

"देवासुर-संग्राम में विजयी देवताओं का अभिमान नष्ट करने के लिए ब्रह्म ने 'यक्ष' का रूप धारण किया । देवताओं में शक्ति-शाली अग्नि और वायु, यक्ष का परिचय लेने के लिए भेजे गए, किन्तु वे यक्ष के सामने ठहर न सके । अन्त में जब देव-राज इन्द्र स्वयं गए, तब यक्ष विलीन हो गया और उसके स्थान पर परम सुन्दरी हैमवती भगवती उमा प्रकट हो गईं । इन्द्र का अभिमान दूर करते हुए उन्होंने कहा कि—"यक्ष साक्षात् ब्रह्म था । तुम लोगों के मिथ्याभिमान को दूर करने के लिए प्रकट हुआ था ।"

इस कथा का तात्पर्य यही है कि अहङ्कार-ग्रस्त लोग ब्रह्म को पहचान नहीं सकते । भगवती उमा (शक्ति) की कृपा से ही वे पहचाने जा सकते हैं । इस प्रकार उपनिषदों द्वारा 'शक्ति-उपासना' का रहस्य-वीज विस्तार से पोषित हुआ है ।

शाक्त-धर्म
की
स्वाभाविक विशेषताएँ
(सर जॉन वुडरफ के लेख के आधार पर)

१. शक्ति की साधना

'अद्वैत-भाव उपनिषद्' में लिखा है—"अहम् स्त्री"। अतएव आदि-जननी की अर्चा हम केवल एक इसी बात से कर सकते हैं कि हम उन दोषों को दूर कर दें, जिनका समर्थन न तो प्राचीन शास्त्रों के प्रमाणों से हो सकता है और न आधुनिक समाज-विज्ञान से ही। स्त्रियों का सम्मान करना, उन्हें प्रसन्न रखना, शिक्षित करना और उनकी समुन्नति करना ही उपासना का उच्च प्रकार है।

स्त्रियों के सम्मान की स्पष्ट व्यवस्थाएँ तन्त्र-ग्रन्थों में पाई जाती हैं। महानिर्वाण-तन्त्र का यह आदेश है कि 'जो कौल साधक घृणा के कारण चाण्डाल या यवन या स्त्री को दीक्षा देने से इनकार करता है, वह पतित है और अधोगति को प्राप्त होता है।' इस प्रकार शाक्त-मत में कृत्रिम तथा काल्पनिक कारणों से नहीं, किन्तु वास्तविक अयोग्यता की बुनियाद के बिना कोई भी व्यक्ति किसी बात से बहिष्कृत नहीं किया जाता।

एक प्राच्य-विद् अमरीकी आलोचक 'तान्त्रिक-दर्शन' की निरर्थकता सिद्ध करते हुए लिखता है कि "वह केवल धार्मिक स्त्रीत्व-वाद है। उसमें सिवा पागलपन के और कुछ नहीं है। उसने प्राचीन वेदान्त को स्त्रीत्व-वाद-मय कर दिया है। यह मत 'सफ्रेगीट' अद्वैत-वादियों के लिए है। उसका यह सिद्धान्त कि स्त्रीत्व-वाद पहले का है और उसमें पुरुष-वाद शामिल है एवं यह स्त्रीत्व-वाद सर्वोच्च दैवी ज्ञान है, बिलकुल निराधार है।"

तान्त्रिक-दर्शन की उक्त "निरर्थकता" की बात व्यक्ति-विशेष की सम्मति है, अतएव इस बात से भी कि जो प्राच्य-विद् लोग अपर्याप्त ज्ञान के कारण स्वयं ही इस सम्मति को पहले से ही मान चुके हैं, वे सहज में इसका परित्याग नहीं करेंगे, परन्तु इस आलोचना की बुनियाद ढूँढ़ने पर मालूम हो गया कि वह स्वयं निरर्थक है। यह उपर्युक्त आलोचना अज्ञानता के कारण न हुई होती, तो आलोचक यह बात लिखना अनावश्यक न समझता कि आकाश में एक स्त्री 'सफ्रेगीट' है या कोई और ही है। वह स्वर्गीय स्त्री

स्त्री-समाज के कुछ सदस्यों से घिरी रहती है और उसके द्वारा जगत् के पुरुष-समुदाय पर शासन होता है, पर यामल-ग्रन्थों में लोगों के ज्ञान के लिए स्पष्ट लिख दिया गया है—'वह न स्त्री और न पुरुष है, दो में से एक भी नहीं है।'

अमरीकी अध्यापक लीस्टरवार्ड तथा दूसरे लोग यह निष्कर्ष निकालते हैं कि तन्त्रों में स्त्री-सम्बन्धी सिद्धान्त को जो महत्त्व दिया गया है, उसका शाक्त-मत के सिद्धान्तों से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। हम यहाँ विज्ञान या समाज-शास्त्र के सिद्धान्तों का निराकरण नहीं कर रहे हैं। पाश्चात्य आलोचकों की यह एक साधारण भूल है कि भारतीय धर्म-ग्रन्थों को भौतिक अर्थों में ला घसीटते हैं। इसी कारण वे उसका रहस्य नहीं समझ पाते।

शाक्त-मत का सम्बन्ध उन आध्यात्मिक सिद्धान्तों से है, जो पूर्व-काल में विद्यमान थे और जिनसे स्त्री-पुरुष दोनों की उत्पत्ति हुई है। जीव-वर्ग के किसी भी रूप में स्त्री पुरुष से पूर्व-वर्ती है। इस प्रश्न से शाक्त-मत का कुछ भी सम्बन्ध नहीं है और न वह यही कहता है कि स्त्री-सम्बन्धी सिद्धान्त एक श्रेष्ठ दैवी सिद्धान्त है। पुरुष-शिव स्त्री-शिव के समान है, क्योंकि दोनों एक ही वस्तु हैं। प्राच्य-विदों को मालूम ही होगा कि सांख्य में 'प्रकृति' स्त्री-वाची है और 'पुरुष' पुरुष-वाची। वेदान्त में भी 'माया' तथा 'देवी' स्त्री-लिङ्ग माने गए हैं। शक्ति न तो नर है और न नारी। नर-नारी का सिद्धान्त उस पर लागू नहीं होता। यह बात समाज-शास्त्र की दृष्टि से कही गई है, क्योंकि इसी शास्त्र में ये शब्द अपने यथार्थ अर्थ में प्रयुक्त होते हैं।

'शक्ति' चिह्न-रूप में स्त्री है, क्योंकि वह उत्पादन करती है। शिव, जहाँ तक चित्-रूप को व्यक्त करता है, निष्क्रिय है। सृष्टि में ये तीनों एक-दूसरे से अभिन्न हैं। परमेश्वर निर्गुण शिव है, जो न तो पुरुष है और न स्त्री। शाक्त-मत के सम्बन्ध में ऐसी भ्रम-पूर्ण सामान्य सम्मतियों की उपस्थिति से यह किसी तरह सम्भव नहीं था कि शङ्कर के माया-वाद या सांख्य-दर्शन के समक्ष उसके अधिक सूक्ष्म विचारों की प्रशंसा होती। वास्तव में शक्ति-वाद का स्त्री-वाद से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है।

शाक्त-धर्म की स्वाभाविक विशेषताएँ उसका अद्वैत-वाद, ईश्वर को मातृत्व-रूप प्रदान, उसकी असाम्प्रदायिकता तथा स्त्रियों और शूद्रों के लिए भी विधान की व्यवस्था तथा उसकी साधना, जिसका अवलम्बन करने से उसकी शिक्षाएँ प्रत्यक्ष हो जाती हैं, इत्यादि महत्त्व-पूर्ण बातें हैं।

जैसा कि मैंने कई बार उल्लेख किया है, शाक्तों की साधना अत्यन्त ही महत्त्व-पूर्ण है, परन्तु आजकल लोगों ने उसकी उपेक्षा कर दी है। आगम और तन्त्र-ग्रन्थों को ऊँचा आसन इसी साधना-प्रक्रिया की बदौलत ही प्राप्त हुआ है। धर्म के सम्बन्ध में वार्त्तालाप करना केवल ज्ञानात्मक व्यायाम है। आत्मा के सम्बन्ध में भारी-भारी उद्गारों से क्या लाभ, जब कि उनका कथन करनेवाले एक-दूसरे को कष्ट देते हों, घृणा से देखते हों, और असहायों की सहायता न करते हों ! वस्तुतः दया ही धर्म है। धर्म एक प्रकार की व्यवहार्य क्रिया है। मन और शरीर दोनों शिक्षित करने चाहिए। जैसे शारीरिक और मानसिक व्यायाम होते हैं, वैसे ही आध्यात्मिक भी।

शाक्त-मत के अनुसार प्रत्येक पुरुष और प्रत्येक स्त्री में शक्ति की एक विशाल राशि अन्तर्निहित रहती है। 'शक्ति'-शब्द 'शक्'-धातु से बना है, जिसका अर्थ किसी कार्य के करने की शक्ति रखना है। स्त्री-पुरुष दोनों शक्ति ही हैं। शक्ति के सिवा वे और कुछ नहीं हैं, क्योंकि शक्ति का स्वरूप चेतना है, और मन तथा शरीर शक्ति ही हैं। तब यह प्रश्न होता है कि वह शक्ति जागृत कैसे की जाय ?

शाक्त-धर्म में 'शक्ति' की साधना का मार्ग बताया गया है। 'आगम' एक प्रकार का क्रियात्मक दर्शन है। मेरे बङ्गाली मित्र अध्यापक प्रमथनाथ मुखोपाध्याय ने ठीक ही कहा है कि आध्यात्मिक जगत् आज एक ऐसे दर्शन का इच्छुक है, जो केवल तर्क न सिखाए, कर्म भी सिखाए। 'शक्ति' की साधना एक क्रिया है। जिन रूपों में साधना पहुँचती है, वे विश्वास, स्वभाव और योग्यता के अनुसार अवश्य बदलेंगे।

२. शाक्त-मत और ईसाइयों के कैथलिक सम्प्रदाय

ईसाइयों के कैथलिक सम्प्रदाय में हिन्दू-धर्म की भाँति पूर्ण साधना विद्यमान है। उसके सैक्रामेण्ट (संस्कार), गिरजे, धूप, दीप, घण्टे आदि उपचारों के सहित खानगी उपासना, प्रतिमा (इसी कारण ये लोग मूर्ति-पूजक कहलाते हैं), भक्ति-सम्बन्धी क्रियाएँ तथा उसी तरह की दूसरी बातें (व्रत), प्रातः, मध्याह्न और सायं-काल का त्रितय (सन्ध्या), माला, कवच धारण, तीर्थ-यात्रा, व्रत, संयम, तपस्या, संन्यास, ध्यान, समाधि इत्यादि जो बातें इस धर्म में प्रचलित हैं, उनसे उपर्युक्त कथन सिद्ध हो जाता है।

इनके सिवा दूसरी छोटी-छोटी ऐसी बातें हैं—जैसे कि शान्ति-अभिषेक (ऐस्परेजेज), जिनके सम्बन्ध में, मैं यहाँ अधिक लिखना नहीं चाहता, परन्तु धर्माध्यक्ष, जो कैथलिक

ईसाई-धर्म के गुरु-पद पर अधिष्ठित होता है, 'मेरी' माता की उपासना, जिनके कारण स्वामी विवेकानन्द इटैलियन कैथलिकों को 'शाक्त' कहते थे, और कम्यूनियन सर्विस में मद्य-रोटी के उपयोग का उल्लेख मैं कर सकता हूँ। यद्यपि 'मेरी' माता की भक्ति उसी प्रकार की जाती है, जैसे यहाँ देवी की, परन्तु वह देवी नहीं है, क्योंकि वह ईश्वर नहीं है। वह ईश्वर की प्रजा है, जिसके द्वारा भगवान् ने अवतार लिया है।

कम्यूनियन सर्विस में मद्य और रोटी ईसा के रक्त और मांस के रूप में परिग्रहीत होती है। इसी प्रकार शाक्त लोग तारा को भी द्रव्य-मयी अर्थात् द्रव्य-रूप में ग्रहण करते हैं। कैथलिक सम्प्रदाय में (यद्यपि पहले दूसरी ही प्रथा थी) उपासक-वर्ग अब मद्य नहीं ग्रहण करता, केवल रोटी ही स्वीकार करता है, परन्तु उनका आचार्य दोनों वस्तुएँ ग्रहण करता है। इस विषय का बाह्य रूप यद्यपि एक-सा ही है, तो भी उसका भीतरी अर्थ भिन्न है। जो लोग यह कहते हैं कि खाने-पीने से अर्चना का कोई सम्बन्ध नहीं है, उन्हें यह याद रखना चाहिए कि स्वयं ईसा ने अपने प्रसिद्ध संस्कार को भोजन से ही प्रारम्भ किया था। ये बातें द्वैत-वादियों की हैं।

अद्वैत-वादी अपने प्रत्येक कार्य को यज्ञ का रूप प्रदान करता है। 'एगेप' अर्थात् प्रीति-भोज एक प्रकार की 'चक्र-पूजा' ही है। यह प्रारम्भ में प्रचलित थी, परन्तु पीछे से कई-एक बुराइयों के उठ खड़ी होने के कारण बन्द कर दी गई। तो भी, इस समय भी, कुछ साधारण ईसाई-सम्प्रदायों में यह प्रथा प्रचलित है।

तन्त्र-शास्त्र की कुछ दूसरी बातें ऐसी हैं, जिनका मेल कैथलिक ईसाइयों की उपासना में नहीं मिलता। वे उनके न्यास और यन्त्र-पूजा आदि हैं। ईसाइयों में इन क्रियाओं का अस्तित्व नहीं है। प्रार्थना से मन्त्रों की तुलना हो जाती है और शाक्तों की मुद्राओं का भी मेल ईसाइयों की उसी प्रकार की प्रक्रियाओं से हो सकता है, परन्तु जितनी अधिक मुद्राएँ शाक्तों में प्रचलित हैं, उतनी ईसाइयों में नहीं हैं।

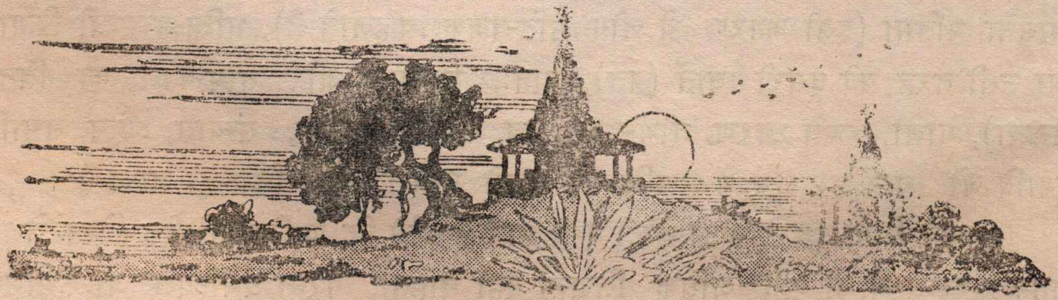

'शाक्त-मत' में 'अद्वैत-वाद'

जिन्होंने 'तन्त्र-शास्त्र' का मनन नहीं किया, उन्होंने यह नहीं जाना कि आज-कल के 'हिन्दू-धर्म' का क्या स्वरूप है। यह विषय भारतीय ज्ञान का एक महत्त्व-पूर्ण अङ्ग है, अतएव योग्य विद्वानों को चाहिए कि वे इसका अनुशीलन करें। इस सम्बन्ध में मैंने जो लिखा है, वह अज्ञानियों को ऊटपटाँग आलोचना करने से सावधान करने के लिए पर्याप्त है।

इस समय केवल इतना ही कहा जा सकता है कि-'जो व्यक्ति शक्ति का मन्त्र जपता है और उसके यन्त्र की अर्चना करता है, वही शाक्त है।' इस प्रकार के उपासकों के कई एक सम्प्रदाय भी हैं। 'शाक्त-दर्शन' ज्ञेय से अज्ञेय का 'मार्ग' बताता है। शाक्त-मत अर्थात् शक्ति-वाद, जैसा कि इस समय अस्तित्व में है, कोई नवीन वस्तु नहीं है, किन्तु वह अपने पूर्व-वर्ती विभिन्न मतों का विकसित तथा मिश्रित रूप ही है।

संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि 'शाक्त-मत' वस्तुतः 'अद्वैत-वाद' है। हम यह बात इसलिए कह सकते हैं कि वह बङ्गाल में फूला-फला, जो प्राचीन गौड़ देश होने के कारण 'अद्वैत-वाद' तथा 'तन्त्र-शास्त्र' का गुरु है। गौड़पादाचार्य, अद्वैत-सिद्धि के प्रणेता मधुसूदन सरस्वती, रामचन्द्र तीर्थ भारती, चित्सुखाचार्य तथा दूसरे लोग गौड़-देश के ही थे। मुझे ब्रह्म-परायण बङ्गाली लोगों की मनोवृत्ति 'अद्वैत-वाद' की ही ओर प्रवृत्त प्रतीत होती है।

'शाक्त-आगम' तथा 'अद्वैत-शैवागम' में सम्पूर्ण अद्वैत-वादियों के लिए उच्च कोटि की अर्चना का विधान है।

शाक्तों के अद्वैत-सिद्धान्तों का विस्तृत विवरण देना बड़ा ही जटिल और रहस्य-पूर्ण कार्य है। यह विषय इस लेख की सीमा के बाहर का है। मैं यहाँ केवल यह उल्लेख कर सकता हूँ कि शाक्त-तन्त्रों में चौंसठ (६४) तत्त्व बताए गए हैं। ये तत्त्व अग्नि, सूर्य और चन्द्र की दस, बारह तथा सोलह कलाओं से निर्मित हुए हैं। ये सब क्रम-पूर्वक 'काम-कला' के स्वरूप हैं। 'काम-कला' के जो अग्नि, सूर्य और सोम-रूप हैं, उनकी क्रम-पूर्वक १०, १२ और १६ कलाओं से और इनके सिवा सदा-शिव की १६, ईश्वर की ७ और रुद्र, विष्णु तथा ब्रह्मा की १०-१० कलाओं से कुल ६४ तत्त्वों की सृष्टि हुई है। ५१ कलाएँ या मातृकाएँ, जो ५१ वर्णों के सूक्ष्म रूप हैं, इन्हीं ६४ तत्त्वों के भाग हैं। ये सब कुण्डलिनी की वे गुरियाँ हैं, जो बिन्दु से लेकर श्रीमातृकोत्पत्ति-सुन्दरी तक अवस्थान करती हैं। जो शाक्त 'मद्य' स्वीकार करते हैं, वे इन सबकी पूजा 'मद्य-घट' में करते हैं।

शाक्तों का दिव्य सिद्धान्त यह है कि वे 'ईश्वर को मातृ-रूप' में देखते हैं। वे उस 'शक्ति' को ईश्वर मानते हैं, जो इस सृष्टि की जननी, पोषिणी तथा संहारिणी है। 'शाक्त'-उपासकों का यही विश्वास है।

सम्मोहन-तन्त्र में शङ्कराचार्य को यद्यपि बौद्धों के विजेता-रूप में उच्च स्थान दिया गया है, अर्थात् वे स्वयं शिव और उनके पाँच शिष्य पञ्च-महाप्रेतों के अवतार माने गए हैं, तो भी उपासना-विधायक आगम-ग्रन्थों में माया-वाद की चर्चा नहीं है, जो आदि शङ्कराचार्य के मतानुसार एक भव्य सिद्धान्त है।

शाक्त उपासक के मत में माया न चैतन्य है न अचैतन्य; न यथार्थ है, न अयथार्थ और न यथार्थ-अयथार्थ ही है। वह ईश्वर-रूपी 'ब्रह्म' से संयुक्त अवश्य है, पर स्वयं ब्रह्म नहीं है। 'ब्रह्म' माया के सिवा और किसी से संयुक्त नहीं है।

शाक्त के लिए 'माया' 'शक्ति'-रूप है। 'शक्ति' अपने आपको 'चेतना' से आवृत्त किए है और स्वयं शक्ति होने के कारण वह 'चिद्-रूपिणी' है। जो कुछ शाक्त के दृष्टि-पथ में आता है, उसे वह 'माया'-मय समझता है। सब कुछ 'चैतन्य'-मय है। शाक्तों की साधना का यही लक्ष्य है।

जब सिद्धि प्राप्त हो जाती है, तब किसी भ्रम के लिए जगह नहीं रह जाती। उस स्थिति के पूर्व तक मनुष्य माया के अधीन बना रहता है और उसे वही करना और सोचना पड़ता है, जिस बात की वह प्रेरणा करती है। इस ईश्वरीय चेतना के अस्तित्व का वास्तव में अनुभव करना दार्शनिक रीति से उसकी व्याख्या करने की अपेक्षा अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण है।

आदि-जननी पहले अपने उपासक की 'माता' के रूप में प्रकट होती है, फिर उसकी 'पत्नी' के रूप में और तब 'कालिका' के रूप में। वह वृद्धावस्था में रोग और मृत्यु के रूप में प्रकट होती है। वही सर्व-संहारिणी शक्ति के रूप में इस संसार में अवतीर्ण होती है। जगद्-व्यापी महा-युद्ध को उसी का स्वरूप समझना चाहिए। ऐसे रूप की भयङ्कर सुन्दरता समझ में नहीं आती और इसी कारण मद्रास के एक ईसाई पादड़ी ने भ्रम-वश यह कहा कि 'देवी क्या है ? वह पिशाचिनी है !' यह बात उसने चामुण्डा-मूर्ति को देखने पर भय-भीत होकर कही थी।

जैसे अद्वैत-वादी किसी सम्प्रदाय में सीमा-बद्ध नहीं होते, वैसे ही शाक्त लोग भी स्वतन्त्र रहते हैं क्योंकि शाक्त-मत संकुचित साम्प्रदायिक भावों से मुक्त है। दूसरी बात यह है कि अन्य आगमों के सदृश शाक्त-मत में सभी जातियों और स्त्री-पुरुष दोनों के लिए विधान निर्धारित है। सच्चे वैदिक सिद्धान्त चाहे जो हों, पर वैदिक लोग सब किसी को अपने धर्म में दीक्षित नहीं करते। वे स्त्रियों और शूद्रों को अपने धर्म से अलग रखते हैं।

शाक्त-मत का सबसे अधिक उज्ज्वल स्वरूप उसका स्त्री-जाति का सम्मान है। जो लोग जगज्जननी की उपासना करते हैं, उनके लिए यह बात स्वाभाविक ही है, क्योंकि स्त्री-मात्र उसी जननी का विग्रह है। 'सर्वोल्लास तन्त्र' में लिखा भी है—'स्त्रियो देवः, स्त्रियों प्राणः।' अम्बा-देवी का विग्रह स्त्री-रूप ही है, अतएव तन्त्र-ग्रन्थों में इस बात का आदेश है कि स्त्रियों और कुमारिकाओं का सम्मान हो और उनकी पूजा की जाय। तन्त्रों में स्पष्ट आज्ञा है कि स्त्रियों को किसी प्रकार की हानि न पहुँचाई जाय, अतएव सती-प्रथा जैसी बातें भी वर्जित हैं। यहाँ तक कि स्त्री-पशु का बलिदान करने का भी निषेध है।

'महा-निर्वाण तन्त्र' में विवाह के पहले कन्याओं के पठन-पाठन की व्यवस्था है। तन्त्र-ग्रन्थों में स्त्रियों को मन्त्रोपदेश करने का अधिकार दिया गया है। स्त्रियाँ गुरु-पद पर अधिष्ठित हो सकती हैं। यही नहीं, स्त्री-गुरु को पुरुष-गुरु से श्रेष्ठ माना गया है। यह अनूठी बात शाक्त-मत में ही है। एक इसी बात से शाक्तों द्वारा स्त्रियों के सम्मान की थाह मिल सकती है। स्त्री-स्वातन्त्र्य के पक्षपाती पाश्चात्य देशों में भी स्त्रियों का ऐसा सम्मान नहीं है। लिखा है कि माता से दीक्षा लेना पुरुष की अपेक्षा आठ गुना अधिक फल-दायक है। ज्ञानी शाक्त की दृष्टि में सम्पूर्ण जगत् स्त्री-मय है।

हमारी उपास्य देवता :

शक्ति

हमको वेद, उपनिषत्, स्मृति, पुराण और दर्शन आदि शास्त्र पढ़ने, देखने, सुनने और विचारने से यह निर्णय प्राप्त हुआ है कि भगवती ही सर्व-प्रथम सृष्टि में पूजी गईं और अब भी पूजी जाती हैं तथा आगे भी पूजी जाएँगी और हम सबके लिए वही 'उपास्य देवता' हैं। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, वरुण, कुबेर, यम आदि देवों ने और यक्ष, किन्नर, सिद्ध चारणों ने तथा भूतादि ने भी इसी का आराधन किया है। इसमें सन्देह नहीं कि सबमें इसकी सत्ता है। इससे पर कोई तत्त्व नहीं है। यदि है, तो यही एक है। यही आत्मा, यही परमात्मा, यही ईश्वर, यही जीव, यही स्थूल, यही सूक्ष्म, यही कारण, यही कार्य, यही इस पार और यही उस पार है। पर-ब्रह्म के ही व्यावहारिक नाम महा-माया, विद्या, प्रकृति, अम्बा, भगवती, शिवा, शक्ति, दुर्गा, चण्डिका आदि हैं।

इसके प्रभाव और प्रसाद को प्राप्त कर ब्रह्मादि देव पूजित हुए और अपने-अपने कार्य में समर्थ हुए। ज्यों-ज्यों ही सृष्टि-क्रम बढ़ता चला, विचार और उपाधि-भेद से तथा दैवी-प्रभाव से और-और देवताओं की, यथा—विष्णु, शिव, सूर्यादि की उपासना बढ़ती गई। इस क्रम से युगान्तर में बहुत-सी उपासनाएँ बढ़ीं, पर यह कहना सप्रमाण है कि आदि में कृत (सत्य) युग में एक 'शक्ति' की ही उपासना थी। फिर शिव-शक्ति दोनों की रही। यह उपासना शक्ति-कृत प्रभाव और अद्वैत-बोध के लिए भगवती ने ही प्रचारित की, ऐसा तत्कालीन आगमों के वाक्य बोधित करते हैं। फिर विष्णु की, तदनन्तर ब्रह्मा की।

ये सब उपासनाएँ शक्ति-सहित थीं। ब्रह्मा-सावित्री, लक्ष्मी-नारायण एवं शङ्कर और गौरी साथ ही पूजे जाते थे, ऐसा बहुत जगह प्रमाण मिलता है। अस्तु, बढ़ते-बढ़ते नाना देवोपासनाएँ प्रचलित हुईं। वे अब भी चल रही हैं। तत्त्व-दृष्टि से देखें, तो सब उपासनाएँ 'शक्ति' की ही उपासना हैं क्योंकि शास्त्र-कार कहते हैं—'सर्वे देवाः स-शक्तयः।' अर्थात् सभी देव शक्ति-सहित हैं। ठीक है, शक्ति न हो तो, देव किसी कार्य के करने में सक्षम नहीं रहते। कार्य में सक्षम क्या, वे बिना शक्ति के फड़क भी नहीं सकते। जैसा भगवान् शङ्कराचार्य कहते हैं—

'शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं । न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि ।'

अर्थात् 'शिव' यदि 'शक्ति' से—चेतना से युक्त रहता है, तभी वह प्रभावी हो सकता है, नहीं तो निश्चय समझिए कि बिना शक्ति के वह फड़क भी नहीं सकता ।

शक्ति ही समस्त संसार के व्यवहार का कारण है । यही महा-माया विद्या है । यही जोवों के बन्धन का कारण है, तो यही जीवों के मोक्ष का भी कारण है ।

सर्व-समर्थ को किसी के आश्रय की जरूरत नहीं रहती । यह भी एक बात देखने और मनन के योग्य है कि पुराणों में ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि देव जब-जब दानवों के द्वारा उपद्रुत हो गए हैं, दुखी हुए हैं, तब-तब परस्पर आपसी आश्रय लेते रहे हैं । कभी तो सभी देव शिवजी के पास जाकर सहायता माँगते हैं, तो कभी विष्णु आदि देव ब्रह्मा के पास जाकर अपना दुःख रोते हैं, तो कभी ब्रह्मादि देव विष्णु के पास जाकर गिड़गिड़ाते हैं । ऐसा प्रायः सभी पुराणों में देख पड़ता है ।

और यह भी सुनिश्चित देख पड़ता है कि ये ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर भी और समस्त इन्द्रादि देव भी भगवती के पास कई बार आश्रय पाने के लिए आए हैं । गिड़गिड़ाए हैं, प्रार्थनाएँ की हैं, किन्तु ऐसा स्थल पुराणों में नहीं आया, जहाँ भगवती जगदम्बा मणि-द्वीपाधि-वासिनी एवं दश-महा-विद्याओं में से एक स्वरूप भी, किसी समय किसी दानवादि से क्षुब्ध होकर सहायता के लिए ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव के पास गई हों, गिड़गिड़ाई हों ।

पाठकों को स्मरण रहे, उपनिषदों में भी अनेक स्थल ऐसे हैं, जहाँ ऊपर लिखी बात स्पष्ट है । देखिए, 'केन उपनिषत्' में—इन्द्रादिकों का गर्व दूर करने को यक्ष-रूप धर कर भगवती ने ही परीक्षण किया ।

ऐसे ही 'श्वेताश्वतर उपनिषत्' का निम्न मन्त्र देखिए । देवता ध्यान करते हैं, भगवती उन्हें दर्शन देती हैं—

ध्यान-योगानुगता अपश्यन् देवात्म-शक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्—(श्वेताश्वतर श्रुतिः)

'इन्द्रो मायाभि पुरु-रूप ईयते'—अर्थात् इन्द्र 'माया' से ही वह रूप धारण करता है । 'मायां तु प्रकृतिं विधातृ'—इत्यादि और भी वचन हैं । ये प्रमाण वैदिक हैं ।

अब पुराणों को देखिए । कोई पुराण ऐसा नहीं है, जहाँ थोड़ा-बहुत विस्तार से या संक्षेप से भगवती का चरित, कथा या माहात्म्य न मिलता हो ।

'मार्कण्डेय पुराण' में सप्तशती ज्वलन्त उदाहरण है। इससे तो भारत-वासी मानव मात्र परिचित हैं। इसमें ब्रह्मा, विष्णु और शिव को इन देवी के तीनों चरितों का ऋषि-ध्यान-कर्ता बतलाया है और जगह-जगह अर्थात् महिषासुर-बध के लिए तथा शुम्भ-निशुम्भ-बध के लिए ब्रह्मा-विष्णु आदि सभी देव-कृत स्तुतियाँ भी स्पष्ट हैं।

'ब्रह्माण्ड-पुराण' में ललितोपाख्यान नाम का एक खण्ड ही श्री भगवती के वर्णन से भरा है। ४० अध्याय हैं। उनमें श्रीत्रिपुरा ललिता पराम्बा का भण्डासुर से युद्ध है और जगदम्बा का देवों से कृत राज्याभिषेक है।

'भागवत' (विष्णु-भागवत) में रुक्मिणी-हरण के समय और चीर-हरण के समय गोप-कन्याओं कृत 'चण्डिका-पूजन' और 'गौरी-पूजन' उल्लिखित है।

'ब्रह्म-वैवर्त-पुराण' का प्रकृति-खण्ड 'दुर्गा-चरित' और 'राधा-वर्णन' से रँगा है।

'पद्म-पुराण' में जहाँ-तहाँ भगवती के व्रतोपवासादि की कथा-महिमादि से बहुत अध्याय पवित्र हुए हैं।

'शिव-पुराण' में पार्वती-चरित परिपूर्णतया है। सती-चरित भी है। यह विशेषता है कि भगवती का चरित कई प्रकार आया है।

'गणेश-पुराण' में गणपति-जन्म और गणपति के अग्र-पूज्य होने की कथा में श्री भगवती का सुन्दर वर्णन है। इसमें २-४ स्थल पर जगदम्बा का सुन्दर चरित आया है।

'देवी-भागवत' तो जगदम्बा के चरितों से ही चमत्कृत है। क्या कहें, इसकी महिमा धन्य है!

ऐसे ही वराह, वामन, मत्स्यादि पुराणों में जहाँ-तहाँ भगवती का वर्णन है। सभी पुराणों में ऐसा स्थल कहीं नहीं देखा, जहाँ भगवती किसी देव-विशेष का आश्रय करती हों।

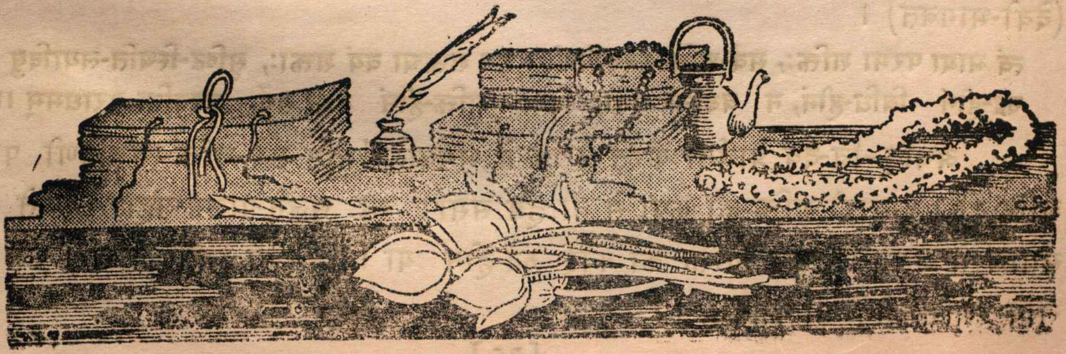

एक प्राचीन सत्य—

शक्ति-उपासना

आधुनिक विज्ञान का सारांश यह है कि जीवन के लिए 'शक्ति' चाहिए। इस सम्बन्ध में आधुनिक विज्ञान के तीन स्पष्ट सिद्धान्त हैं—(१) निर्बलों के लिए संसार में कोई स्थान नहीं है, (२) प्रकृति चुन-चुन कर निर्बलों को समाप्त करती है और (३) योग्यतम प्राणी ही जीवन-सङ्घर्ष में ठहर सकते हैं।

आधुनिक विज्ञान का यह सारांश भारत के लिए नया नहीं है। भारतीय ऋषियों ने लाखों वर्ष पूर्व इस सत्य को समझ लिया था। तभी उसका कहना था—

वीर-भोग्या वसुन्धरा। दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्म-शक्त्या।

अर्थात्—हे मनुष्यों ! भाग्य की अपेक्षा शक्ति-भर प्रयत्न करो। यह पृथ्वी वीर-भोग्या है।

प्राचीन भारतीय शास्त्रों में यह सत्य सर्वत्र स्वीकृत हुआ है कि 'शक्ति' विश्व-व्यापी तत्त्व है। निम्न-लिखित प्रमाण इस बात को स्पष्ट करते हैं। यथा—

या बिभर्ति जगत् सर्वमीश्वरेच्छा ह्यलौकिकी। सैव धर्मो हि सुभगे ! नेह कश्चन संशयः ॥

अर्थात्—जो ईश्वर-इच्छा-रूपी शक्ति सम्पूर्ण संसार को धारण करती है, वही धर्म है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

योग्यतावच्छिन्ना तु धर्मिणः शक्तिरेव धर्मः।

अर्थात्—धर्मी की योग्यता-युक्त शक्ति ही धर्म है। (पातञ्जल योग-साधना)

प्रकृत्यैव च कर्माणि, क्रियमाणानि सर्वशः।

अर्थात्—प्रकृति-रूपी शक्ति द्वारा ही संसार के सभी कार्य होते हैं। (गीता)

या मूल-प्रकृतिः सूक्ष्मा जगदम्बा सनातनी। सैव साक्षात् परं ब्रह्म, साऽस्माकं देवताऽपि च।

अर्थात्—जो सनातन, सूक्ष्म, मूल प्रकृति-रूपा शक्ति है, वह पर-ब्रह्म देवता है। (देवी-भागवत)।

त्वं माया परमा शक्तिः, सर्व-शक्ति-स्वरूपिणी। तव शक्त्या वयं शक्ताः, सृष्टि-स्थिति-लयादिषु ॥
रुद्र-हीनं विधि-हीनं, न वदन्ति जनाः किल। शक्ति-हीनं तथा सर्वे, प्रवदन्ति नराधमम् ॥

अर्थात्—त्रि-देव प्रार्थना करते हैं कि हे भगवति ! तुम सर्व-शक्ति-स्वरूपिणी परमा शक्ति हो। तुम्हारी शक्ति की कृपा से ही हम संसार का सृजन-पालन-संहार करते हैं। समाज में असमर्थ अधम व्यक्ति को कोई रुद्र-हीन या विधि-हीन नहीं कहता। उसे सब लोग 'शक्ति-हीन' ही कहते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'शक्ति'-विषयक आधुनिक विज्ञान के सिद्धान्त हमारे प्राचीन शास्त्रों के लिए किसी भी रूप में नूतन नहीं हैं, अपितु भारतीय शास्त्र का सबसे पहला महान् ग्रन्थ 'ऋग्-वेद' शक्ति-रूपी शब्द 'अग्नि' से ही प्रारम्भ होता है। यथा—'अग्निमीले पुरोहितं यशस्य-देवमृत्विजम्'।

ऋग्वेद का 'वागम्भृणी सूक्त' शक्ति के ही महत्त्व को स्पष्ट-तया प्रतिपादित करता है और घोषित करता है कि निखिल ब्रह्माण्ड को बनानेवाली 'शक्ति' ही है।

उषा-देवी, सूर्य-देवी तथा लक्ष्मी-देवी के सूक्तों में भी शक्ति-भाव ही प्रकट हुआ है। उपनिषदों में शक्ति की महिमा पाई जाती है, ब्राह्मण तथा आरण्यक-ग्रन्थों में शक्ति के सरस्वती, गायत्री तथा सावित्री आदि नाम दिए गए हैं। गायत्री-शक्ति को वेद-रहस्य का ज्ञान करानेवाली माना गया है। पुराण तो विभिन्न शक्तियों की कथाओं से भरे ही पड़े हैं।

इस प्रकार भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त में अनादि काल से 'शक्ति की उपासना' प्रचलित है और इस महान् देश का शक्ति-मय साहित्य हमें आज भी अशक्त से शक्त बना सकता है। केवल हमें विधि-पूर्वक उसका अध्ययन और मनन करने की आवश्यकता भर है। निम्न आर्ष घोषणा एक अनुभूत सत्य ही है कि—

त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्त-वीर्या, विश्वस्य बीजं परमाऽसि माया।
सम्मोहितं देवि ! समस्तमेतत्, त्वं वै प्रसन्ना भुवि-मुक्ति-हेतुः॥

अर्थात्—हे जगदम्ब ! तुम अनन्त बल-सम्पन्ना वैष्णवी शक्ति हो। इस विश्व की बीज - रूपा परमा माया हो। है देवि ! तुमने इस विश्व को मोहित कर रक्खा है। अतः तुम्हारी प्रसन्नता से ही पृथ्वी पर जीव को मोक्ष प्राप्त हो सकता है। (दुर्गा-सप्तशती)

कलि-काल का युग-धर्म—

शक्ति की उपासना

भारत में आदि-काल से 'शक्ति की उपासना' प्रचलित है। सनातन 'ब्रह्म' निष्कल है। जब 'ब्रह्म' सकलता को प्राप्त करता है, तो उसकी 'इच्छा'-शक्ति ही 'प्रकृति' और 'पुरुष' का रूप धारण करती है और सृष्टि का उद्भव होता है। प्रकृति और पुरुष ही परमेश्वर और परमेश्वरी हैं। दोनों वास्तव में एक हैं और इनकी एकता का ज्ञान ही योग की चरम-सीमा है। प्रकृति 'देवी' है, पुरुष 'शिव'। दोनों की संयुक्त अवस्था ही 'अर्द्ध-नारीश्वर' का रूप है। दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध वैसा ही है, जैसे वाणी और शब्द का। महा-कवि कालिदास ने कहा है—

वागर्थाविव सम्पृक्तौ, वागर्थ-प्रतिपत्तये।

जगतः पितरौ वन्दे, पार्वती-परमेश्वरौ॥

जब शिव और देवी सन्मुखी होते हैं, तो विश्व की रचना होती है और उसका पालन होता है। जब ये विमुखी हो जाते हैं, तो सृष्टि लय हो जाती है। ब्रह्म की वह शक्ति, जो शिवा-शिव का रूप धारण करती है और जिसके द्वारा विश्व की रचना, पालन और लय होता है, शाक्तों की उपास्य देवता है। 'शाक्त' इसको माता के रूप में देखता है और इसी भाव से उसकी आराधना करता है।

यही भुवन-मोहिनी, जगज्जननी और महिमा-मयी महा-माया है। इसके रूप अनेक हैं। इनमें काली, बगला, छिन्नमस्ता, भुवनेश्वरी, मातङ्गी, षोडशी, धूमावती, त्रिपुर-सुन्दरी, तारा और भैरवी दश-महा-विद्याएँ हैं। देवी के अनेक अवतार हैं। वह आज भी नाना रूपों में भारत के कोने-कोने और ग्राम-ग्राम में पूजी जाती हैं, परन्तु देवी के अनादि रूप को देवता भी नहीं जानते। यदि किसी ने जाना, तो एक सदा-शिव त्रिलोचन अनङ्गाङ्ग-हर शङ्कर ने।

जब सृष्टि का कार्य आरम्भ हुआ, तो इसके उद्भव का भार ब्रह्मा को मिला। परमेश्वरी ने अपने एक अंश से सावित्री की, ब्रह्मा की शक्ति के रूप में, उत्पत्ति की। फिर विष्णु को पालन का भार मिला और लक्ष्मी उनकी शक्ति बनीं। लय के लिए शिव आए और स्वयं जगदम्बा शिव की शक्ति बनीं। परन्तु भुवन-मोहनी का अपना रूप क्या है, इसे किसी ने नहीं देखा। 'दुर्गा-सप्तशती' में कहीं-कहीं संकेत मिलता है कि सम्भव है, देवताओं ने उसकी झलक देखी हो। वेद, पुराण और तन्त्र महा-माया परमेश्वरी की वन्दना और ध्यान से भरे हैं। देवताओं ने सदा परमेश्वरी की उपासना और वन्दना की है। यह कहीं नहीं मिलता कि जगदम्बा ने किसी देवता की आराधना की हो। जो समस्त ब्रह्माण्ड की वन्दनीया है, जिसकी शक्ति का न आदि है न अन्त, उसी महा-शक्ति का 'शाक्त' उपासक है।

'शक्ति की उपासना' भारत में प्राचीन काल से क्रमागत चली आ रही है। इसका क्रम 'वैदिक उपासना' के साथ-साथ 'विशेष साधना' के रूप में चल रहा है। सामान्य धर्म वैदिक रहा, पर इसके साथ ही 'शक्ति-उपासना'-'मन्त्र-योग' के रूप में आदि काल से बराबर विद्यमान रही। वैदिक काल के ऋषियों की योग-मयी तपस्या का जहाँ-जहाँ उल्लेख आया है, उससे स्पष्ट होता है कि ऋषि 'परम शाक्त' थे। मन्त्र-विद्या द्वारा ही 'शक्ति की उपासना' होती है और यह साधना सनातन से गुप्त धारा के रूप में बहती आई है।

महा-भारत-काल के पश्चात् जब कलि-काल का आरम्भ हुआ और जनमेजय के यज्ञ में अग्नि के शाप से 'वैदिक-क्रिया' की सफलता ब्राह्मणों की शक्ति के परे हो गई, तो प्रकट रूप से 'तन्त्रों' का प्रतिपादन हुआ और 'पञ्च-देव की उपासना' प्रचलित हुई। आजकल के हिन्दू-धर्म पर तन्त्रों की पूरी छाप है। इन्हीं तन्त्रों का एक प्रमुख अङ्ग 'शक्ति की उपासना' को निर्दिष्ट करता है।

'शक्ति-उपासना' का सामान्य रूप तो नगर-नगर और ग्राम-ग्राम में प्रचलित है। भगवती की वन्दना कौन हिन्दू नहीं करता? स्थान-स्थान पर देवी के मन्दिर बने हैं, परन्तु यह सामान्य उपासना है। इससे आगे की सीढ़ियाँ ही साधक को शाक्तों की प्रबल उपासना तक पहुँचाती हैं।

शाक्त 'मन्त्र-योग' द्वारा परमेश्वरी का साक्षात्कार करता है। 'मन्त्र' ही देवी की सूक्ष्म देह है। इसे प्राप्त करना दुर्लभ है। ज्योति ही मन्त्र को जीवित और दीप्ति-मान करती है और वह ज्योति गुरु ही से प्राप्त होती है। बिना गुरु के 'शक्ति-उपासना' में अग्रसर होना और सफलता प्राप्त करना दुर्लभ ही नहीं, असम्भव है।

जहाँ 'शक्ति-उपासना' का अधिकार प्राप्त करना कठिन है, वहाँ उसके साथ-साथ 'शक्ति-उपासना' द्वारा प्राप्त की हुई 'शक्ति का पाचन' भी टेढ़ी खीर है। इस आराधना से साधक में शक्ति का संचार होता है। उसे बहुत-कुछ करने की क्षमता प्राप्त होती है, परन्तु शक्ति के दुरुपयोग से साधक की हानि होती है और उसका लोक-पर-लोक बिगड़ सकता है। 'शक्ति-उपासना' शीघ्र फल-दायक है, परन्तु इस पर चलना छत पर दौड़ना है। यदि गिरे, तो हड्डी-पसली टूटने का भय है। शस्त्र पाकर उसका दुरुपयोग न करना, धन पाकर दुराचारी न बनना, ऐश्वर्य प्राप्त करके अधर्म की ओर अग्रसर न होना, बल पाकर अत्याचार न करना—यह सब संयमी ही कर सकते हैं, सब नहीं। इसी कारण से 'शक्ति-उपासना' जोखम की वस्तु बन जाती है। इसीलिए गुरु यह देखता है कि शिष्य इस अति प्रबल उपासना का अधिकारी है या नहीं।

यदि साधक शक्ति के उल्लास का पाचन कर गया और देवी के प्रसन्नार्थ उपासना करता गया, तो वह शिव बन जाता है और पृथ्वी पर स्वयं देवता बन कर बिचरता है। उपासना के और-और मार्ग या तो भोग प्रदान करते हैं या मोक्ष की ओर ले जाते हैं। केवल 'शक्ति-उपासना' ही भोग और मोक्ष दोनों साथ-साथ देकर कैवल्य तक पहुँचा देती है।

यों चाहे व्यक्ति और समाज जगदम्बा को भूल जाए परन्तु जब-जब व्यक्ति और देश पर सङ्कट पड़ा तब-तब सदैव शक्ति ही का आवाहन हुआ। भारत का इतिहास इसका साक्षी है। भारतीय स्वतन्त्रता का युद्ध भी 'वन्दे-मातरम' के गान से छिड़ा। 'वन्दे-मातरम' की 'माता' क्या महिमा-मयी महा-माया से कोई भिन्न वस्तु है? 'आनन्द-मठ में संन्यासियों ने जिस 'माता' की वन्दना की है, वह जगदम्बा नहीं तो क्या है? आज जब भारत स्वतन्त्र हुआ, तो इस परम शक्ति-शाली राष्ट्र-गान का तिरस्कार करना कहाँ की बुद्धिमानी है! यह वैसा ही है, जैसे उसी सीढ़ी को फेंकना, जिसके सहारे कोई छत पर चढ़ा हो।

शास्त्र का सङ्केत है कि कलि-काल का युग-धर्म 'शक्ति-उपासना' ही है—'**कलौ चण्डी विनायकौ**।' तन्त्र-ग्रन्थों में स्पष्ट रूप से लिखा है कि जब कलियुग प्रबल होगा, तो एक-मात्र 'शक्ति-उपासना' ही भव-सागर के पार कराने का साधन होगी और उस समय शाक्त-धर्म की परम गोपनीय विद्या प्रकाश में आ जाएगी। क्या वह समय अब आ गया?

◆ ◆

शाक्त-धर्म का प्रचार

कुछ लोगों का कहना है कि 'शाक्त-धर्म' कभी प्रचार का धर्म नहीं रहा है। यह धर्म कुछ विशेष अधिकारियों को ही प्राप्त होता रहा है, जो गुप्त रीति से इसकी साधना करके अपना कल्याण-साधन करते रहे हैं। यही कारण है कि इस 'प्रचार'-युग में भी 'शाक्त'-धर्म का कहीं भी प्रचार होता हुआ नहीं दिखाई दे रहा है, परन्तु उपर्युक्त बात ठीक नहीं जान पड़ती।

जिन्होंने तन्त्र-ग्रन्थों का थोड़ा भी अध्ययन किया है, वे जानते हैं कि 'बौद्ध'-धर्म के पहले समग्र दक्षिण - पूर्वी एशिया-खण्ड में एकमात्र 'शाक्त'-धर्म ही का व्यापक प्रचार था। तन्त्र-ग्रन्थों में यह विशाल भू-खण्ड अश्व-क्रान्त, विश्व-क्रान्त और रथ-क्रान्त इन तीन क्रान्तों में बाँटा गया है और प्रत्येक क्रान्त के लिए अलग-अलग तन्त्र-ग्रन्थ निर्दिष्ट किए गए हैं, जिससे उन क्रान्तों में उन-उन ग्रन्थों के अनुसार यजन-भजन हो। भारत के सम्बन्ध में लिखा है कि यहाँ तान्त्रिक धर्म-व्यवस्था काश्मीर, गौड़ और केरल सम्प्रदायों में विभक्त हो गई थी। यही नहीं, सारे देश को ५० प्रदेशों में बाँटकर यह भी बता दिया गया है कि अमुक-अमुक देश अमुक-अमुक सम्प्रदाय में रह कर अपना यजन-भजन करे।

इन बातों से यही प्रकट होता है कि पहले 'शाक्त'-धर्म का अवश्य प्रचार था और सो भी अति व्यवस्थित रूप से। बौद्ध-काल में तथा उसके बाद के काल में अन्य धर्मों के प्रचार-कार्य के आगे, जान पड़ता है, शाक्तों का प्रचार-कार्य नहीं चल सका और उन्हें अपनी रक्षा के लिए लाचार हो 'गोपनीयता' का बाना धारण करना पड़ा, जिससे उनका सारा प्रचार - कार्य बन्द हो गया। साथ ही उनका सङ्गठन भी टूट गया, और यही दशा सदियों से बराबर चली आई। ऐसी दशा में यदि 'शाक्त'-धर्म के आचार्य यह कहते फिरें कि 'शाक्त'-धर्म प्रचार का धर्म नहीं है, तो यह उनके अज्ञान का ही द्योतक है।

यदि 'शाक्त'-धर्म धर्म है, तो उसका प्रचार होना चाहिए और सु-व्यवस्थित रूप से होना चाहिए। यह कहना भी कि देश में इने-गिने शाक्त हैं, एक मिथ्या कथन है। सारे देश में शाक्त एक बहुत बड़ी संख्या में निवास करते हैं। हाँ, उनकी अपनी कोई संस्था अवश्य नहीं है, जिससे उनके व्यापक अस्तित्व का पता चलता। ऐसी दशा में इस बात की नितान्त आवश्यकता है कि शाक्त लोग भीरुता को छोड़कर प्रकाश में आएं और अपना सङ्गठन करके अपने धर्म को पुनः पहले की सी महानता प्रदान करें। ऐसा करने से उनका भी कल्याण होगा और संसार का भी।

इसके सिवा एक यह बात भी है कि 'गोपनीयता' के सिद्धान्त ने प्रिय 'शाक्त'-धर्म को इतना संकुचित रूप दे दिया है कि वह अब घर की किसी एकान्त कोठरी में बैठकर साधना करने भर तक में सीमित रह गया है। हम इस बात को भूल गए हैं कि यह शाश्वत धर्म किसी समय विशाल भारत का एक व्यापक जीवित धर्म ही नहीं था, किन्तु वही उसका सब कुछ था, परन्तु सदियों तक विरोधियों की मार खाते-खाते आज का हमारा 'शाक्त'-समाज अत्यधिक छिन्न - भिन्न ही नहीं हो गया है, किन्तु निर्जीव भी हो गया है। अतएव इसमें पुनः जीवन - सञ्चार करने के लिए घोर साधना की आवश्यकता है। इसके लिए शाक्त-धर्माचार्यों तथा शाक्त - साधकों दोनों ही को अत्यधिक सहयोग के साथ काम करना पड़ेगा। तब कहीं शाक्त-समाज में जागरण के चिह्न दिखाई देंगे।

शाक्तोपयोगी श्रेष्ठ पुस्तकें

पूजा-रहस्य

हिन्दुओं की पूजा का विवरण

मूल्य १५-०० रु०

सचित्र
मुद्राएँ एवम् उपचार

हिन्दुओं की पूजा में प्रयुक्त होनेवाली मुद्राओं एवं पूजोपचार (आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, गन्ध, अक्षत, पुष्प, धूप, नैवेद्य, ताम्बूल, प्रदक्षिणा) का प्रामाणिक वर्णन ।

मूल्य १५-०० रु०

सविधि
श्री कुण्डलिनी साधना

षट्-चक्रों एवं कुण्डलिनी-योग का विवेचन

मूल्य १५-०० रु०

सविधि
दश-महाविद्या स्तोत्र-संग्रह

भ० काली, भ० तारा, श्री श्रीविद्या, श्रीभुवनेश्वरी आदि महा-विद्याओं के स्तोत्रों के संग्रह

प्राप्ति-स्थान : कल्याण मन्दिर प्रकाशन, अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग—२११००६

रजि० सं० ३२६८१/५७] अक्टूबर-नवम्बर १६८६ [रजि० सं० ए० डी० ६६

परम स्नेह-मयी

माधवी मां

परम पूजनीया संस्थापिका

"मातृका आश्रम"

['मानव सेवा महल', दक्षिणपुरी, नई दिल्ली]

सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक : ऋतशील शर्मा, एम० ए०, परा वाणी प्रेस, इलाहाबाद-६